मानव संस्कार ग्रन्थमाला - बारहवाँ पुष्प

वेदों में बताये गये
उपदेशों व आज्ञाओं पर चल कर ही
मानव जीवन को सफल
बनाया जा सकता है।

ऋग्वेद आध्यात्मिक उपदेश

पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार के ऋग्वेदभाष्यम्
से संकलित 200 आध्यात्मिक उपदेश

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक
मदन अनेजा
मो. 9873029000

प्रेरणा स्त्रोत

(15.06.1955- 27.04.2023)

श्रीमती स्वराज अनेजा

पत्नी श्री मदन अनेजा

भूमिका

वर्तमान काल में मानव, ऋषियों के यथार्थ ज्ञान से अनभिज्ञ होकर, भौतिकवाद और पाश्चात्य संस्कृति का पोषक और समर्थक बन गया है। अधिकतर मनुष्य संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव और भोगवाद में लिप्त होने के कारण वेद और आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं कर पा रहे हैं। इस कारण अनैतिकता, भ्रष्टाचार व अनाचार सब तरफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य आध्यात्मिक शोषण, अन्धकार, अन्धविश्वास, दुराचार, दुर्व्यवहार का शिकार आज भी हो रहा है। इस कठिनाई, समस्या व स्थिति का समाधान करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है।

उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक ''**ऋग्वेद आध्यात्मिक उपदेश**'' में 200 आध्यात्मिक उपदेशों का संकलन वेदों के प्रख्यात दार्शनिक एवं विचारक पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित ''ऋग्वेदभाष्यम्'' से समाजहित में किया गया है।

आध्यात्मिक उपदेशों का प्रतिदिन स्वाध्याय, चिंतन व पालन करने से मुख्यत: निम्न लाभ हैं :-

1. ये उपदेश मनुष्य में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करते हैं और उसे पतन की ओर अग्रसर होने से रोकते हैं।
2. मानव को सृष्टिकर्ता व सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता का अनुभव कराते हैं।
3. व्यक्ति को परिपूर्ण, पवित्र एवं साहसी बनाते हैं।
4. मनुष्य को वैदिक ज्ञान से परिचित कराते हैं।
5. मनुष्य को अपनी इन्द्रियाँ वश में करने हेतु सहायता करते हैं

ताकि व्यक्ति इसी जन्म में ईश्वर की अनुभूति कर सके।

6. सब क्लेशों (कष्टों) का मूल अविद्या है। क्लेशों से ऊपर उठने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। प्रभु ने इस प्रकाश को उपदेशों के रूप में वेदवाणी में रखा है।
7. ये उपदेश भक्ति भावना को हृदय में निष्ठा एवं श्रद्धा जाग्रत करते हैं।
8. मनुष्य का दृष्टिकोण विशाल बनाते हैं और आदर्श जीवन जीने में सहायता करते हैं।
9. ये उपदेश आत्मसंतुष्टि प्रदान करने में सहायक हैं। हमें प्रभु का ज्ञान कराते हैं।
10. ये उपदेश जीवन में आई चुनौतियों का मुकाबला करने व स्वयं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में केवल आध्यात्मिक उपदेशों का ही संकलन किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये आध्यात्मिक उपदेश साधकों की, वेदों के प्रति रूचि उत्पन्न करेंगे और वे वैदिक धर्म को अपनाकर अपना व अन्यों के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत व निष्पाप बनायेंगे।

पं. हरिशरण जी का भाष्य अति उत्तम है, सरल है। अतः आप से निवेदन है कि इन उपदेशों को विस्तार से समझने के लिए पं. हरिशरण जी के भाष्य का स्वाध्याय अवश्य करें।

नोट :- पुस्तक में दी गई मन्त्र से पूर्व संख्या इस पुस्तक की है और अन्तवाली संख्या ऋग्वेदभाष्यम् की है।

मदन अनेजा

आध्यात्मिक उपदेश

1. **उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तधिया वयम्।**
   नमो भरन्त एमसि।। ऋ. 1-2-1

उपदेश : प्रतिदिन प्रात: सायं प्रभु-चरणों में उपस्थित होना मानव के लिए इसलिए आवश्यक है कि इससे -

(i) पवित्रता की भावना बनी रहती है।

(ii) शक्ति का संचार होता है।

(iii) जीवन का उद्देश्य धन ही नहीं बनता और परिणामत: पारस्परिक प्रेम विनष्ट नहीं होता।

(iv) वस्तुत: जैसे शरीर के लिए भोजन है, जैसे मस्तिष्क के लिए स्वाध्याय है, उसी प्रकार हृदय के लिए यह ''दैनिक ध्यान'' है। जैसे भोजन के बिना शरीर निर्बल होकर ठीक विचार नहीं कर पाता, उसी प्रकार उपासना के बिना हृदय मलिन होकर वासनाओं से अभिभूत हो जाता है।

(v) भोजन शरीर को सबल बनाता है, स्वाध्याय मस्तिष्क को तथा उपासना हृदय को बलवान बनाने के लिए आवश्यक है।

2. **तमित् संखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।**
   स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः।। ऋ. 1-10-6

उपदेश : वस्तुत: संसार में हमारे सच्चे मित्र प्रभु ही हैं, प्रभु की मित्रता में ही हमारा कल्याण है। इससे भिन्न मित्रताएँ कुछ स्वार्थ को लिए हुए हैं। प्रभु की ही मित्रता पूर्ण निष्काम है। अत: यही मित्रता हमारे सर्वहितों को सिद्ध करने वाली है। चुम्बक-सान्निध्य से समान लोहे में भी चुम्बकीय शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार प्रभु की उपासना से उपासक भी प्रभाव-सम्पन्न हो उठता है।

प्रभु कृपा से जहाँ हमें शक्ति प्राप्त होती है वहाँ शक्ति के साथ धन भी प्राप्त होता है जिससे कि हम सांसारिक आवश्यकताओं को भी सुचारू रूप से पूर्ण कर सकें।

3. **यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति।**
तस्मै पावक मृळय।।9।। ऋ. 1-12-9

उपदेश : प्रभु पावक हैं, वे उपासक के जीवन को पवित्र करने वाले हैं। वस्तुत: प्रभु की उपासना से हमें सब दिव्य गुण प्राप्त होते हैं। सब बुराइयों को समाप्त करने का मार्ग 'प्रभु का उपासन' ही है। प्रभु की उपासना उपासक को 'हविष्यमान'=हविवाला (दानपूर्वक अदन करने वाला) बनाती है।

वह व्यक्ति प्रभु का स्तोता कहलाता है जो प्राकृतिक भोगों में नहीं फँसता, त्यागपूर्वक ही पदार्थों का प्रयोग करता है। इस हविष्यमान् के जीवन को प्रभु कल्याणमय करते हैं।

4. **अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहुतिभि:।**
इमं स्तोमं जुषस्व न:।। ऋ. 1-12-12

उपदेश : प्रभु-भक्ति से उच्च लक्ष्य-दृष्टि उत्पन्न होकर हमारे जीवन को उन्नत करती है। हमें अशुभ बातों से हटाकर यह प्रभु-भक्ति उत्कृष्ट गुणों को धारण कराती है एवं हमारे जीवन में प्रभु-भक्ति से देवों का आह्वान होता है, हमारे हृदय मन्दिर में इन दिव्य गुणों का प्रतिष्ठापन होता है। प्रभु भक्ति से ही वासनाओं का विनाश होकर हमारी ज्ञान की ज्योति भी चमक उठती है एवं प्रभु के आदेश के अनुसार हम सोमों का सेवन करने वाले बनें। इससे हमारे ज्ञान की ज्योति भी चमकेगी और हमारे अन्दर दिव्य गुणों का स्थापन होगा।

5. **स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः।**
यत्रामृतस्य चक्षणम्।। ऋ. 1-13-5

उपदेश : हृदयरूप आसन वह है जहाँ प्रभु आकर विराजमान होते हैं और उस अमृत प्रभु का जीव को दर्शन हुआ करता है। पवित्र हृदय में ही प्रभु का प्रकाश होता है। 'प्रभु सर्वव्यापक है' यह बात ठीक है, यह ठीक ही है कि वे पाषाणादि में भी हैं परन्तु वहाँ जीव को प्रभु का दर्शन इसलिए नहीं होता कि उन पाषाणादि में जीव नहीं है। दृष्टा नहीं है तो देखेगा कौन ? हृदय में दर्शनीय प्रभु भी है और दृष्टा जीव भी है, अब इस हृदयस्थली में ही प्रभु का दर्शन होता है। होता तभी है जब यह स्थली अत्यन्त निर्मल होती है, वासना शून्य होती है और मलरहित होती है।

6. **इन्द्रः सहस्त्रदाव्रां वरुणः शंस्यानाम्।**
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः।। ऋ. 1-17-5

उपदेश : जितेन्द्रिय पुरुष, भोगासक्त न होने के कारण, अपनी आवश्यकताओं को न्यून रखने के कारण, हजारों धनों के दानों का करने वाला होता है। जब जितेन्द्रियता का अभाव होता है, तब मनुष्य की आवश्यकताएं उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, आवश्यकताएं बढ़ने के साथ दान देना सम्भव नहीं रहता। दान की बात तो दूर रही, ऐसा व्यक्ति अन्याय-मार्गों से धनार्जन का प्रयत्न करता है। जितेन्द्रिय ही दान दे सकता है। यही हजारों की संख्या में धनों का दान करने वाला होता है।

7. **इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा।**
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम्।। ऋ. 1-17-8

उपदेश : जब मनुष्य जितेन्द्रिय व व्रतमय जीवन वाला होता है तब वह कभी भी सब-कुछ अकेला खा जाने वाला नहीं होता। वह

'केवलादि' नहीं बनता और इसलिए 'केवलाघ' नहीं होता। वह अवश्य बाँटकर खाने की वृत्ति वाला होता है। इसकी बुद्धि सदा संविभाग (बांटना) के विचार की ओर झुकती है। जब मनुष्य की बुद्धि संविभाग के विचार वाली हो जाती है तब उसका जीवन अवश्य सुन्दर बनता है।

जिस समाज व राष्ट्र में इस संविभाग की बुद्धि वाले पुरुषों का बाहुल्य होता है, उस समाज व राष्ट्र का सदा कल्याण ही होता है। संविभाग के होने पर हीनभावना व अतिभोजन का प्रश्न नहीं रहता। ऐसा होने पर कोई अतिभोजी व कोई हीनभोजी नहीं होता। अतः वहाँ बीमारी भी समाप्त हो जाती है। मनुष्यों में संविभाग की भावना आते ही सामाजिक कष्टों का अन्त हो जाता है। सत्य बात तो यह है कि यही विचार युद्धों का भी अन्त कर देता है।

8. **नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः।**
मरुद्भिरग्न आ गहि।। ऋ. 1-19-2

उपदेश : यज्ञमय जीवन हमें भोगवृत्ति से ऊपर उठाता है और हमारी तेजस्विता का कारण बनता है। भोग ही शक्ति को जीर्ण करते हैं। नैतिक स्वाध्याय हमारे ज्ञान की सतत् वृद्धि का कारण बनता है।

उपरोक्त दोनों वृत्तियों को जगाने के लिए प्राणसाधना की आवश्यकता है। अतः प्रभु कहते हैं कि हे प्रगतिशील जीव! तू प्राणों के द्वारा हमारे समीप आने वाला बन। प्राण साधना से चित्तवृत्ति का निरोध होकर आत्मदर्शन होता है। चित्तवृत्ति के निरोध का प्रासंगिक लाभ यह भी है कि भोगवृत्ति न रहने से जीवन यज्ञमय बनता है तथा हमारी रुचि ज्ञानप्रवण होती है। परिणामतः हम अद्भुत तेज व प्रकाश को प्राप्त करके देवों व मत्यौ में आगे बढ़ने

वाले होते हैं।

9. ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते।
मरुद्भिरग्न आ गहि।। ऋ. 1-19-6

उपदेश : हे प्रगतिशील जीव! तू प्राणों से, प्राणसाधना से प्रभु को प्राप्त करने वाला हो। प्राण साधना से इन्द्रिय-दोष दूर होकर मानव-जीवन पवित्र बनता है, मनुष्य की वृत्तियाँ दिव्य हो जाती हैं और देव बनकर ये सदा प्रकाशमय लोक में रहते हैं, उस प्रकाशमय लोक में जोकि दु:ख के सम्पर्क से रहित व दीप्तिमय है। इनका अगला जन्म होता है तो उस नाकलोक में होता है जो कि द्युलोक में स्थित है। इस लोक में भी ऊपर उठकर ये प्रभु को प्राप्त करने वाले होते हैं।

10. हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः।
मरुतो मृळयन्तु नः।।12।। ऋ. 2-23-12

उपदेश : जब हम शुभ मार्ग पर चलते हैं तो हमारी प्राण-शक्ति का विकास होता है। प्राण साधना से हममें शुभ मार्ग पर चलने की वृत्ति उत्पन्न होती है और शुभ मार्ग पर चलने से प्राण शक्ति का पोषण होता है। ये प्राण विकसित शक्ति वाले होकर सोम रक्षण के द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हैं। ज्ञानाग्नि की दीप्ति के द्वारा ये प्राण हमारा रक्षण करते हैं। प्राणों के स्वास्थ्य पर ही सारा सुख निर्भर करता है। प्राणशक्ति की क्षीणता में ऐहिक व आमुस्मिक सब सुख समाप्त हो जाते हैं।

11. उरूं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उं।
अपदे पादा प्रति धातवे ऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।।
ऋ. 1-24-8

उपदेश : प्रभु द्वारा आकाश में स्थापित सूर्य हृदय के रोगों को दूर

करता है। सूर्याभिमुख होकर प्रभु का ध्यान करने से छाती पर पड़ने वाली सूर्य-किरणें हृदय के सब रोगों को दूर करती है। उदय होता हुआ सूर्य कृमियों को नष्ट करता है और अस्त होता हुआ सूर्य भी रश्मियों से कृमियों को नष्ट करता है।

12. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
स्तोम रुद्राय दृशीकम्।। ऋ. 1-27-10

उपदेश : सामान्यतः मनुष्य बाल्यकाल में खेलता रह जाता है और यौवन में विषय-प्रवण बना रहता है। वार्धक्य (बुढ़ापा) में आकर उसे प्रभु-स्तवन का ध्यान आता है। अतः उसे जराबोध कहा गया है।

प्रभु कहते हैं कि तू प्रभु स्तवन को जीवन भर प्राप्त करने वाला बन। तेरा यह स्तोम सदा चले। यह स्तोम (यज्ञ) दृशीक हो- आँखों से दिखे। तू केवल श्रव्य शक्ति व कीर्तन ही न करता रह जाए। प्राणियों की सेवा ही उस प्रभु का 'दृशीक स्तोम' है। वे प्रभु सब प्राणियों के अन्दर विद्यमान हैं। उन प्राणियों का हित करते हुए हम अन्तः शरीरस्थ उस प्रभु को ही प्रीणित कर रहे होते हैं।

13. नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने
आ तू नं इन्द्र संशय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्त्रेषु तुवीम घ।।
ऋ. 1-29-3

उपदेश : उत्तम जीवन के लिए यह आवश्यक है कि हम अपना ही आत्मालोचन (आत्मनिरीक्षण) करें और अपने जीवनों की कमी को दूर करने का प्रयत्न करें। इसी के लिए स्वाध्याय द्वारा अपने बोध को बढ़ायें।

घर में पति-पत्नी हैं। वे एक दूसरे के ही दोषों को देखेंगे तो प्रेम की इतिश्री होकर घर नरक बन जाएगा। स्कूल में विद्यार्थी और अध्यापक ऐसा ही करने लगे तो शिक्षा का वातावरण समाप्त

हो जाएगा। इसी प्रकार राष्ट्र में राजा और प्रजा परस्पर दोष देखने लगें तो राष्ट्र अवनत होकर शत्रुओं से पादाक्रान्त कर लिया जाएगा। अत: हम एक दूसरे को ही देखने में न लगे, अपने ही जीवन का आलोचन करने वाले बनें।

14. समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्त्रेषु तुवीमघ।।

ऋ. 1-29-5

उपदेश : प्रभु कृपा से ही हम कभी भी अशुभ शब्दों को बोलने वाले न हों, गधे के समान न बनें। समझदार बनकर सदा शुभ शब्द ही बोलें। औरों के अवगुणों को प्रकट करते हुए हम सचमुच नासमझी का काम कर रहे होते हैं। व्यर्थ के वैर-विरोध तो इससे बढ़ते ही हैं। यह पाप-कथा हमारे अपने अकल्याण का कारण हो जाती है। हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप हमें शुद्ध व सदा प्रसन्न ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियों में प्रशंसनीय जीवन वाला बना दीजिए।

15. आश्विनाव श्वावत्येषा यातं शवीरया।
गोमद्दस्त्रा हिरण्यवत्।। ऋ. 1-30-17

उपदेश : प्राण साधना का लाभ यह है कि इससे- (1) इन्द्रियाँ प्रशस्त बनती है, (2) जीवन में क्रियाशीलता आती है, (3) प्रभु-प्रेरणा प्राप्त होती है और (4) ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तम होकर ज्ञान की ज्योति बढ़ती है।

प्राण साधना के अभाव में इन्द्रियों की मलिनता बढ़ती है, तमोगुण की बुद्धि के साथ आलस्य भी अधिक आ जाता है, प्रभु-प्रेरणा के सुनने का प्रश्न ही नहीं रहता।

16. कस्त उष: कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये।
कं नक्षसे विभावरि।। ऋ. 1-30-20

उपदेश : जो भी व्यक्ति उषः जागरण को जीवन का नियम बनाकर इस उषःकाल में प्रभु का स्मरण करता है, वह व्यक्ति नीरोग जीवन बिताता हुआ अपना सुन्दरता से पालन करने वाला होता है।

उषःकाल में जागने के निम्न लाभ हैं –

(क) यह दोषों को दग्ध करता है (ख) नीरोगता प्रदान करता है, (ग) पालन व रक्षण करता है-बुराइयों से बचाता है, (घ) ज्ञान-ज्योति को बढ़ाता है और (ङ) प्रभु की ओर ले जाता है।

17. **त्वमग्ने प्रथमो मातरि श्वन आविभव सुक्र तुया विवस्वते।**
अरे जेतां रोदसी होतृ वूर्ये ऽसघ्नो भार मयजो महो वसा।।

ऋ. 1-31-3

उपदेश : प्रभु दर्शन के लिए परिचर्या (भक्ति) व ज्ञान आवश्यक है। इसके लिए उत्तम कर्मों व संकल्पों का होना भी अनिवार्य है तथा इस प्रभु से मेल के लिए प्राणसाधना आवश्यक है। प्रभु के मेल होने पर द्युलोक व पृथिवीलोक चमक उठते हैं। शरीर यदि स्वास्थ्य की दीप्ति से चमक उठता है तो मस्तिष्क ज्ञान की दीप्ति से चमक उठता है। हम भक्तों के सब कार्य प्रभु ही पूर्ण किया करते हैं-सब यज्ञ प्रभु द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। सर्वमहान होता प्रभु ही है। प्रभु ही पूज्य हैं, सर्वप्रद हैं।

आओ! हम परिचर्या, उत्तम कर्म तथा प्राणसाधना के द्वारा प्रभु-दर्शन करें। प्रभु-दर्शन से हमारा शरीर स्वस्थ होगा और मस्तिष्क ज्योति से चमक उठेगा।

18. **त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभूर्वा याम उत रातिरश्विना।**
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वासयोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः।।

ऋ. 1-34-1

उपदेश : प्राणापान की साधना से, वीर्य की ऊर्ध्वगति होकर बुद्धि तीव्र होती है और मनुष्य प्रकृति, जीव व परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर पाता है। प्राण साधना होने पर यह शरीर रूपी रथ सदा कार्यों में व्याप्त रहता है। आलस्य दूर होकर शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य का मन निर्मल होकर उदार होता है और मनुष्य खूब ही दान की वृत्ति वाला होता है।

19. **त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः। त्रयः स्कम्भासः स्कभितासं आरभे त्रिर्नक्त याथस्त्रिर्वश्विना दिवा।। ऋ. 1-34-2**

उपदेश : प्राण साधना से शरीर का रक्षण होकर –

(क) शरीर माधुर्य वाला होता है अर्थात् हमारे सब कार्य माधुर्य को लिए हुए होते हैं।

(ख) सोम की रक्षा होकर शरीर कान्ति सम्पन्न बनता है।

(ग) इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि ज्ञानवर्धन करने वाले होकर शरीर रूप रथ में सहारे के लिए तीन स्कम्भ से होते हैं।

(घ) अतः प्रातः व सायं तीन प्राणायाम अवश्य करने ही चाहिए।

20. **क्व त्री चक्रा विवृतो रथस्य क्व त्रयो बन्धुरो ये सनीडाः। कदा योगो वाजिनो रासभस्य ये नं यज्ञं नासत्यो पयाथः।**

ऋ. 1-34-9

उपदेश : मानव का शरीर रूप रथ –

(क) धर्म-अर्थ-काम तीनों के समरूप से सेवन के लिए दिया गया है।

(ख) इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि – इस शरीर-रथ के चक्र हैं। इनके ठीक होने पर ही रथ चलेगा।

(ग) वात, पित्त, कफ-ये तीन रथ के बन्धन-दण्ड हैं। इनमें

विकार हुआ और रथ विछिन्न हुआ।

(घ) इस रथ में प्रभु का मेल होता है अर्थात् वे इसके सारथी बनते हैं तो कोई भी अशुभ कर्म नहीं होता। रथ गड्ढ़ों में गिरता नहीं, मार्ग पर ही चलता है।

21. **बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यः मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।**
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु।।

ऋ. 1-52-9

उपदेश : वासनाओं का पराजय व हमारी विजय प्राण साधना पर ही आश्रित है। वासनाओं का विनाश करके ये प्राण ज्ञान पर्दे पर वासनाओं को नहीं आने देते और इस प्रकार हमारा जीवन दीप्त बना रहता है।

प्राणों की यही सबसे बड़ी सेवा है कि वे हमारी बुद्धियों को सुस्थिर रखते हैं एवं प्रभु स्तवन के साथ प्राण साधना जुड़ जाती है तो हमें कामादि शत्रुओं का भय नहीं रहता। प्रभुस्तवन का हमारे जीवन में वही स्थान है जो कि रामायण में हनुमान का, राम के बिना रामायण का कोई आधार ही नहीं, उसी प्रकार प्रभु स्तवन जीवन का मूलाधार है। जैसे हनुमान के बिना रामायण अधूरी ही रहती है वैसे ही प्राण साधना के बिना जीवन भी अधूरा रह जाता है।

22. **वह्नि यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम्।**
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा।।

ऋ. 3-60-1

उपदेश : प्राण साधना ''शारीरिक, मानस व बौद्धिक'' स्वास्थ्य को जन्म देकर हमें प्रभु दर्शन के लिए तैयार कर देती है। उस प्रभु दर्शन के लिए जो -

(क) जगती के भार का वहन करने वाले हैं; विष्णु रूपेण सारे

ब्रह्माण्ड को धारण कर रहे हैं।

(ख) सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक ऋषियों के हृदयों में ज्ञान का प्रकाश करने वाले हैं, हृदयस्थरूपेण सभी को ज्ञान की प्रेरणा दे रहे हैं।

(ग) बड़ी उत्तमता व प्रकर्ष से हमारा रक्षण करने वाले हैं; रोगों व पापों से बचाने वाले वे प्रभु ही हैं।

इस प्रभु को प्राप्त करने के लिए हमें भृगु बनना है–अपने को ज्ञान से परिपक्व करना है और साथ ही प्राण साधना का नैत्यिक अभ्यास करना है।

23. अस्य शासुरु भयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्वपतिर्विभु वेधाः।।

ऋ. 1-60-2

उपदेश : प्रभु का जीव के लिए यही अनुशासन है कि वह ज्ञानी बने और ज्ञानपूर्वक यज्ञात्मक कार्यों को करने वाला हो–उशिक बने, हविष्यमान बने। जो भी उशिक व हविष्यमान बनता है वह प्रभु के शासन का सेवन करता है। प्रभु की सच्ची उपासना यही है कि हम ज्ञानी बनें और यज्ञशील हों।

24. अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सोमयच्छत्।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः।।

ऋ. 1-61-11

उपदेश : प्रभु ब्रह्मा हैं। ज्ञान उनकी पत्नी 'सरस्वती' के रूप में है। पुत्र को पिता से जैसे सम्पत्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार हम ब्रह्म से जीव को ज्ञान प्राप्त होता है। जीव में भी सरस्वती की एक धारा बहने लगती है। यह धारा वासना के सन्ताप की प्रबलता में सूख जाती है। वासना नष्ट हुई और यह प्रवाह फिर से बहने लगा। इस

ज्ञान प्रवाह के बहने से मनुष्य इन्द्रियों को वशीभूत करने के लिए प्रवृत्त होता है। वह विषयों का दास नहीं बना रहता। इस प्रकार प्रभु इस भक्त को ईशान (स्वामी) बना देते हैं और इस दाश्वान्= भोगसक्त न होकर देने की वृत्ति वाले के लिए प्रभु सब कुछ देते हैं। प्रभु कृपा से दाश्वान् को किसी बात की कमी नहीं होती।

25. अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः।।

ऋ. 1-72-2

उपदेश : प्रभु प्राप्ति की इच्छा तो प्रायः सभी को होती है, परन्तु इच्छा मात्र से उस प्रभु को पाया नहीं जा सकता। वे प्रभु सर्वत्र विद्यमान हैं। हमारे अन्दर ही निवास कर रहे हैं। ऐसा होते हुए भी हम उस प्रभु को प्राप्त नहीं कर पाते। कारण यही है कि इस प्रकृति की चमक से हमारी आँखें चुंधियायी रहती हैं और उस सत्यस्वरूप प्रभु को हम देख नहीं पाते। उस प्रभु को पाने के लिए आवश्यक है कि हम ''विषयों से अनाकृष्ट, समझदार, श्रमशील, मार्गस्थ तथा ज्ञान व कर्म का धारण करने वाले बनें।

26. एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः।।

ऋ. 1-73-10

उपदेश : वैदिक ज्ञान हमारे जीवन में नियमितता को पैदा करता है। ज्ञान को प्राप्त करके जब हम धनार्जन करते हैं तब धन के कारण होने वाली बुराइयों से बचे रहते हैं। इसलिए आवश्यकता है कि हमारे अवकाश का सारा समय वेदमन्त्रों के मनन में बीते, ज्ञान-प्राप्ति में हम अवकाश का विनियोग करें।

आइये! ज्ञान का धारण करते हुए हम धनों का अर्जन करने

वाले बनें।

27. यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये।
दस्मत्कृणोष्यध्वरम्।। ऋ. 1-74-4

उपदेश : जीवन का सौन्दर्य तीन बातों पर निर्भर करता है -

(1) हम हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनें। प्रभु ज्ञान को प्राप्त कराने वाले होते हैं, जो प्रभु के सन्देश को नहीं सुनता, वह विनाश को प्राप्त होता है।

(2) हम भोजन में सात्त्विक पदार्थों का ही प्रयोग करें। इससे ही हमारी चित्तवृत्ति का शोधन होगा, और

(3) हम हिंसारहित कर्मों-अध्वरों के ही करने वाले हों।

उपरोक्त तीन बातें हमारे जीवन को सुन्दर व दुःखशून्य बनाती हैं।

28. का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम।।
ऋ. 1-76-1

उपदेश : हे परमात्मन्! आपका उपगमन, आपकी उपासना आनन्द देने वाली, अत्यन्त शान्ति प्राप्त कराने वाली होती है। यह आनन्दमय मनोवृत्ति वाला पुरुष यज्ञों से-देवपूजा, संगतिकरण व दानात्मक कर्मों से आपकी शक्ति को प्राप्त करता है। प्रभु का उपासक प्रभु की शक्ति को क्यों न प्राप्त करेगा? जैसे अग्नि में पड़ा हुआ लोहे का गोला अग्नि की भाँति चमकने लगता है, वैसे यह उपासक भी प्रभु की शक्ति से दीप्त हो उठता है।

प्रभु की उपासना से आनन्द, पवित्रता, शान्ति, शक्ति, निश्चिन्तता व निर्भीकता प्राप्त होती है।

29. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्।
मार्डीकं धेहि जीवसे।। ऋ. 1-79-9

उपदेश : धन से सम्भावित सब अवनतियों को रोकने का काम ज्ञान ही करता है। ज्ञान होने पर हम धन से धन्य बनते हैं, जबकि ज्ञान के अभाव में यह धन हमारे निधन का ही कारण बनता है। इसलिए वेद में ज्ञानयुक्त धन की ही प्रार्थना की गई है।

धन उतना ही ठीक है जो कि पोषण के लिए पर्याप्त हो, अधिक धन तो बोझमात्र है और शरीर में अनुपयुक्त भोजन की भांति व्याधि का ही कारण बनता है अर्थात् जो धनार्जन का प्रकार मानस अशान्ति पैदा करे, वह अनुपादेय ही है।

30. सहस्त्रक्षो विचर्षीणिरग्नी रक्षांसि सेधति।
होता गृणीत उक्थ्यः।। ऋ. 1-79-12

उपदेश : प्रभु हमारी सब राक्षसी वृत्तियों को, आसुर भावनाओं को हमसे दूर करते हैं। प्रभु हमें ज्ञान देते हैं, हृदयस्थ होते हुए भी अशुभ कर्मों से बचने के लिए प्रेरित करते हैं, सदा शुभ मार्ग पर चलने के लिए उत्साहित करते हैं। ये उन्नति के लिए सब आवश्यक वस्तुओं के देने वाले प्रभु स्तोत्रों से स्तुति करने के योग्य हैं और हमसे स्तुति किये जाने योग्य ये प्रभु हमें ज्ञान की वाणियों का उपदेश देते हैं।

प्रभु ही आद्य गुरु (आदिकालीन, मूल रूप से) हैं। इनके रक्षण में ही हम कल्याणकारक ज्ञान प्राप्त करते हैं। उत्तम गुरुओं का मिलना भी प्रभुकृपा से ही होता है।

31. क ईषते तुज्यते को बिभाय को मसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय।।
ऋ. 1-84-17

उपदेश : आनन्दमय कौन है?

(1) आनन्दमय वह है जो वासनाओं को हिंसित करता है, उन पर प्रबल आक्रमण करता है और दानशील होता है।

(2) आनन्दमय वह है जो कि प्रभु का भय रखता है और पापकर्म करने से भयभीत होता है।

(3) आनन्दमय वह है जो सर्वत्र वर्तमान प्रभु को विचारता है, पूजता है और प्रभु की सत्ता में विश्वास करता है।

(4) आनन्दमय वह है जो उस प्रभु को अपने समीप जानता है। प्रभु की समीपता में उसे सांसारिक भय नहीं रहते।

यह आनन्दमय पुरुष लोकहित के लिए प्रार्थना करता है। यह केवल अपने तक ही सीमित नहीं रहता। अपने लिए उत्तम सन्तान, धन व शरीर की प्रार्थना इसी उद्देश्य से करता है कि वह लोकहित के कार्यों को करने में सशक्त हो। स्वार्थ से ऊपर उठने के कारण ही वस्तुत: वह आनन्द प्राप्त करता है।

32. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वदेवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।

ऋ. 1-89-10

उपदेश : स्वास्थ्य ही सब उत्तमताओं का निर्माण करने वाला है। स्वास्थ्य से ही हममें निर्माण शक्ति की वृद्धि होती है। अस्वस्थ व्यक्ति का मस्तिष्क तोड़-फोड़ की ओर जाता है।

यह स्वास्थ्य ही हमारे यज्ञादि उत्तम कर्मों का रक्षण करने वाला है और इस प्रकार यह स्वास्थ्य ही हमारे जीवनों को पवित्र करता है और हमारा त्राण (बचाव) करता है, हमें दुर्गति में पड़ने से बचाता है। यह स्वास्थ्य ही सब देव है। सब दिव्य गुणों का विकास स्वास्थ्य से ही होता है।

पंचकोषों के पाँचों विकास इस स्वास्थ्य पर निर्भर करते

हैं। अन्नमय कोश का तेज, प्राणमय कोश का वीर्य, मनोमय का ओज व बल, विज्ञानमय का 'मन्यु' तथा आनन्दमय का 'सहस' स्वास्थ्यमूलक ही है। संक्षेप में, जो विकास आज तक हुआ अथवा जो विकास आगे होना है, वह सब स्वास्थ्य ही है, स्वास्थ्य पर ही आश्रित है।

33. शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः।।

ऋ. 1-90-9

उपदेश : शान्ति किसे प्राप्त होती है?

निम्नलिखित सात बातों का पालन करने पर निःसन्देह आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक-सभी दृष्टिकोणों से शान्ति प्राप्त होगी। शरीर, मन व बुद्धि-सभी शान्ति से कार्य करने वाले होंगे।

(1) सबके साथ स्नेह करने वाले बनो।
(2) द्वेष का निवारण करके श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न करो।
(3) काम-क्रोध व लोभ रूप शत्रुओं का नियमन (नियन्त्रण) करो। काम शरीरों को नष्ट करता है, क्रोध मनों को अशान्त करता है और लोभ बुद्धि को विचलित कर देता है।
(4) जितेन्द्रिय बनकर शक्तिशाली बनो।
(5) उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) ज्ञान को प्राप्त करो।
(6) हृदय को भी व्यापक वृत्ति वाला बनाओ। और
(7) अपने प्रत्येक कर्म को व्यवस्थित करो। तुम्हारे जीवन में व्यवस्था दिखाई दे।

स्वास्थ्य ही ज्ञान का प्रकाशक है।

34. त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते।
दक्षंदधासि जीवसे।। ऋ. 1-91-7

उपदेश : जो भी व्यक्ति ईश्वर की प्रेरणाओं के अनुसार अपने नियत कर्मों को करता हुआ, उस प्रभु का पूजन करता है, उसको प्रभु, जीवन के लिए, आवश्यक धन देते ही हैं।

दीर्घ जीवन के लिए धन व बल दोनों ही आवश्यक हैं। इस भौतिक शरीर को दीर्घकाल तक ले चलने के लिए 'धन' बाह्य साधन है और 'बल' आन्तरिक साधन। दोनों के होने पर ही दीर्घ जीवन संभव है। इसे प्राप्त करने के लिए हम –

(क) ईश्वर की पूजा की वृत्ति वाले बनें।
(ख) गुणों का ग्रहण व दोषों का त्याग करें। और
(ग) अपने साथ यज्ञ का सम्बन्ध स्थापित करें।

35. इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
सोम त्वं नो वृधे भव।। ऋ. 1-91-10

उपदेश : प्रभु की प्रीति प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम–

क. यज्ञशील हों।
ख. स्तुति वचनों का उच्चारण करने वाले हों।

यह यज्ञशीलता और उपासन हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं। यह प्रभु की समीपता हमें निष्पापता व निर्भयता प्राप्त कराके सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त कराती है। पाप से भय का संचार होता है, भय से अशक्ति और अशक्ति से अवनति होती है।

अतः हम यज्ञशील हों तथा प्रभु के उपासक बनें ताकि जीवन में उन्नति पथ पर आगे बढ़ सकें।

36. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम।। ऋ. 1-92-17

प्राण साधना होने पर ये प्राणापान मन के दोषों को दूर करके, अशुद्धियों का क्षय करके हमारे जीवन को यशस्वी बनाते हैं। बुद्धि को तीव्र करके ये ज्ञान प्राप्ति का साधन बनते हैं। शरीर में बल और प्राणशक्ति को प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार यह प्राण साधना शरीर, मन व मस्तिष्क –तीनों के विकास का कारण बनती है।

37. **रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्।।**

ऋ. 1-96-6

उपदेश : प्रभु की उपासना से ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञानी पुरुष धनों का यज्ञों में ही व्यय करता है। वह समझता है कि यज्ञों के अभाव में धन भोग–विलास की वृद्धि का कारण बनकर मनुष्यों के पतन का हेतु बनता है। यज्ञों में विनियुक्त होने पर यह यज्ञशेष का सेवन करने वाले को अमृतत्व प्राप्त कराता है। यज्ञशेष ही तो अमृत है। इस प्रकार, अमृतत्व की रक्षा करते हुए देव पुरुष इस अग्रणी सब द्रव्यों को देने वाले प्रभु को धारण करते हैं।

यज्ञशील पुरुष भोगासक्त न होने से रोगों से आक्रान्त नहीं होता, अमर बनता है, रोगरूप मृत्युओं से बचा रहता है। यही प्रभु का सच्चा उपासक व धारक है।

38. **वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जाता विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण।।**

ऋ. 1-98-1

उपदेश : सभी को प्रभु की ही उपासना करनी योग्य है। प्रभु इस ब्रह्माण्ड का शासन करने वाले हैं। इस ब्रह्माण्ड से ही वे प्रकट व प्रादुर्भूत होते हैं। ब्रह्माण्ड के एक एक लोक व पिण्ड में प्रभु की

रचना का महत्त्व स्पष्ट दिखता है। एक-एक पदार्थ उस प्रभु की महिमा को प्रकट करता व प्रभु का प्रकाश करता है।

प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में ही वेदज्ञान के द्वारा हमें सुमति प्राप्त करा दी है। हम सदा उसके अनुसार ही कार्यों को करने वाले बनें। यह वेदशास्त्र ही हमारे लिए प्रमाण हो-इसी के प्रमाण से हम कार्यों में व्यवस्थित हों।

39. **स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।**
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।

ऋ. 1-100-12

उपदेश : जहाँ प्रभु का स्मरण है, वहाँ कामादि शत्रुओं का प्रवेश नहीं हो पाता। वे प्रभु अत्यन्त तेजस्वी हैं, उद्गूर्ण बल वाले हैं, अनन्त ज्ञान वाले हैं, शतशः पदार्थों को प्राप्त कराने वाले हैं। महान हैं अथवा अत्यन्त पदार्थों को प्राप्त कराने वाले हैं। महान हैं अथवा अत्यन्त भासमान हैं। इन सब शब्दों के द्वारा प्रभु का स्तवन हमें भी ऐसा बनने की प्रेरणा देता है- (क) हम भी क्रियाशील बनें, (ख) आसुरीवृत्तियों को नष्ट करें, (ग) कामादि शत्रुओं के लिए भीम व उग्र हों, (घ) खूब ज्ञान प्राप्त करें, (ङ) खूब दानी बनें।

40. **रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य।**
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु।।

ऋ. 1-100-16

उपदेश : प्रभु ने हमें शरीर रूप रथ दिया है तो शरीर के साथ इन्द्रियाश्व भी दिये हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर रथ में प्रकाश (ज्ञान) देकर उन्नति की साधन बनती हैं और कर्मेन्द्रियों के कारण गति है और ज्ञानेन्द्रियों के कारण प्रकाश। प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु ने भिन्न-भिन्न कार्यों को करने की शक्ति रखी है। इन इन्द्रियों से इस

शरीर रथ की शोभा नितान्त बढ़ गई है।

इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य को ठीक से करती चलें, यही 'सुख' है। यह अश्वपङ्क्ति मानव प्रजाओं में ही है-उन प्रजाओं में ही है जो कि अपना सम्बन्ध उस प्रभु से स्थापित करने का प्रयत्न करती हैं। पशु-भोग योनियों में होने से प्रभु के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते, वहाँ इन्द्रियों का इस प्रकार विकास संभव नहीं। प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले मनुष्यों में ये इन्द्रियाँ कल्याण का ही कारण बनती हैं। दुर्भाग्यवश इस मानव-जीवन में भी हम भोग प्रधान जीवन वाले ही बन गये तो अकल्याण ही अकल्याण है।

41. **तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन।**
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम्।।

ऋ. 1-110-3

उपदेश : मूल में वेदज्ञान एक है। वह 'ऋक्, यजुः, साम व अथर्व' इन चार में बंट जाता है। ऋग्वेद प्रकृति का ज्ञान देता हुआ 'विज्ञान वेद' कहलाता है, यजुर्वेद जीव के कर्त्तव्यभूत यज्ञों का प्रतिपादन करता हुआ 'कर्मवेद' होता है। प्रभु की उपासना का प्रतिपादन करता हुआ सामवेद 'उपासनावेद' है और मनुष्य को नीरोग तथा निर्वैर बनाकर ब्रह्म को प्राप्त कराने वाला अथर्ववेद 'ब्रह्मवेद' है। एवं, यह प्रभु का दिया हुआ ज्ञान एक होता हुआ चार शाखाओं वाला कहलाता है।

42. **याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसद तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये।**
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।।

ऋ. 1-112-7

उपदेश : प्राण साधना का परिणाम/लाभ निम्न हैं -

1. हमारा जीवन पवित्र बनता है।
2. हम बाँटकर खाने की वृत्ति वाले होते हैं।
3. परस्पर प्रेम से मिलकर बैठते हैं।
4. प्रभु के उपासन में आसीन होते हैं।
5. तपस्वी जीवन वाले बनते हैं।
6. यज्ञशील होते हैं।
7. शरीर को रोगों से व मन को वासना से बचाते हैं।
8. हमारी बुद्धि तीव्र बनती है।
9. हमारे मलों का भी दहन होता है।
10. हम बुराइयों का हिंसन करने वाले होते हैं।

इस प्रकार हम अपने को उस स्थिति के लिए सिद्ध करते हैं जिसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक व आधिभौतिक तीनों प्रकार के ही कष्ट दूर हो जाते हैं।

43. अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्त शतारित्रा नावमातस्थिवांसम्।।

ऋ. 1-116-5

उपदेश : इस संसार में धन व परिवार आदि कोई भी वस्तु अवलम्बन (सहारा) नहीं है। प्रभु ही वास्तविक सहारा है। प्रभु की ओर झुकाव प्राणापान की साधना से होता है, अत: प्राणापान ही आरम्भण हो जाते हैं। यह संसार अनस्थान है-यहाँ कहीं भी स्थिति नहीं हो पाती, मनुष्य की तृप्ति नहीं होती। वह सदा अतृप्त सा रहता है। प्रभु ही आधार है। प्रभु की प्राप्ति में ही आप्तकामत: है। कामों की प्राप्ति में तो सीमा आती ही नहीं। प्रभु की प्राप्ति में प्राणापान ही साधन बनते हैं। संसार की कोई भी वस्तु ग्रहण करने योग्य नहीं है। प्रभु ही ग्राह्य हैं। उनकी प्राप्ति इन प्राणापानों की साधना से

होती है। यह प्राणापान का ही महत्त्व है कि वे हमें प्रभु के समीप ले चलते हैं और हम इस संसार-समुद्र में डूबने से बच जाते हैं।

44. **परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः।**
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम।।

ऋ. 1-116-20

उपदेश : संसार प्रलोभनों से परिपूर्ण है। इसमें मनुष्य को मार्ग नहीं दिखता और वह भटक जाता है। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखता है। रात्रि ही रात्रि लगती है। नियमपूर्वक प्राणासाधना होने पर हमें प्रकाश दिखता है। उस प्रकाश में हम मार्ग देखकर उस पर आगे बढ़ पाते हैं और क्रमशः लक्ष्य स्थान पर पहुँचने वाले बनते हैं। प्राण साधना से शरीर निरोग व दृढ़ बनकर उन्नति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ता है।

45. **दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्व१न्तः।**
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण।।

ऋ. 1-116-24

उपदेश : सामान्यतः मनुष्य जीवन-भर भौतिक प्रवृत्तियों से आन्दोलित होता हुआ उन्हीं में उलझा रहता है और इस संसार-नदी में डूब जाता है। 'मकान बनाना है, वस्तुयें खरीदनी हैं, पुत्र-पुत्रियों का विवाह करना है'- मनुष्य इन्हीं कार्यों में उलझा रहता है। सब कार्य अन्ततः मोक्ष के साधन न होने से अशिव हैं।

प्राण साधना से मनुष्य की प्रवृत्ति बदलती है। वह प्रभु का स्तोता बनता है। अब वह संसार-नदी में बहता नहीं चलता, इसे पार करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार ये प्राण उसे नदी में डूबने से बचाते हैं और इस नदी के जल से ऊपर उठा लेते हैं। जैसे चम्मच द्वारा उठाये गये सोम की आहुति यज्ञ में दी जाती है, उसी

प्रकार यह भी अपने जीवन की आहुति यज्ञात्मक कर्मों में देता है।

46. **मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रयत्नो होता विवासते वाम्।**
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः।।

ऋ. 1-117-1

उपदेश : प्राणसाधना से हमें जो कुछ प्राप्त होता है, वह सब हमारी उन्नति का साधन होता है। इस साधना से शरीर स्वस्थ व सबल बनता है, मन व इन्द्रियाँ पवित्र व निर्दोष होती हैं, बुद्धि तीव्र होती है और ज्ञान की वाणी विशेष रूप से हमारा आश्रय करती है। सूक्ष्म बुद्धि उन ज्ञान की वाणियों को अच्छी प्रकार ग्रहण करने वाली होती है। यह हृदय के आवरण को दूर करके हमें प्रभु-प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाती है और साथ ही यह साधना हमें वह शक्ति भी देती है जिससे कि हम उस प्रेरणा के अनुसार कार्य कर सकें।

47. **अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य।**
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेणं।।

ऋ. 1-117-15

उपदेश : प्रातः उठना, नित्य कर्मों में लगना, स्वास्थ्य के लिए आवश्यक कर्मों के साथ सन्ध्या व स्वाध्याय आदि करना'- ये सब प्रतिदिन के नित्य कर्म कहाते हैं। जब मनुष्य लोभाभिभूत होकर धन कमाने में उलझ जाता है तब यह सब कार्य गौण हो जाते हैं। सन्ध्या और स्वास्थ्य तो समाप्त ही हो जाते हैं।

प्राण साधना से लोभादि की अशुभ वृत्तियाँ नष्ट होकर हमारे जीवन में शुभ वृत्तियाँ जागती हैं और हम दिन-प्रतिदिन उन्नति करते हुए उन्नति पर्वत के शिखर पर पहुँचने वाले बनते हैं।

48. उद्धन्दनमैरतं दसनाभिरुद्रेभं दस्त्रा वृषणा शचीभिः।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम्।।

ऋ. 1-118-6

उपदेश : प्राण साधना करने वाला माता, पिता, आचार्य व अतिथियों का अभिवादन करता हुआ सदा उनमें प्रदर्शित सन्मार्ग पर चलता है और इस प्रकार विषयकूप में डूबने से बच जाता है। प्रभु स्तवन करता हुआ यह व्यक्ति विषय-समुद्र में नहीं डूबता। प्राण-साधक प्रभु का स्तोता बनता है और प्रभु स्तवन उसे विषय-समुद्र में डूबने नहीं देता। प्राणसाधना द्वारा शक्ति के संयम के कारण मनुष्य सदा युवा बना रहता है।

49. तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा
नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः।।

ऋ. 1-128-2

उपदेश : प्रभु की उपासना 'नियमितता, नम्रता व त्याग' से होती है। प्रभु का उपासक सूर्य व चन्द्रमा की गति की भांति प्रत्येक क्रिया को ठीक समय पर करने वाला होता है। प्रभु का उपासन नमन के द्वारा होता है। जितनी-जितनी नम्रता व त्याग, उतना-उतना प्रभु के समीप, जितना अभिमान, उतना प्रभु से दूर।

प्राणसाधना से चित्तवृत्ति निर्मल होती है और बुद्धि सूक्ष्म होती है। प्रभु-दर्शन के लिए ये दोनों ही बातें सहायक होती हैं। प्राण साधना हमें प्रभु-दर्शन कराने वाली होती है, प्राणसाधना से रहित पुरुष के लिए प्रभु अत्यन्त दूर हैं, वह प्रभु दर्शन नहीं कर पाता।

**50. क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः।।**

ऋ. 1-128-5

उपदेश : तीन व्रतों के पालन से जीवन शुद्ध होता है और हमारी पापवृत्ति नष्ट हो जाती है -

क. यज्ञात्मक कार्यों के द्वारा यज्ञरूप प्रभु का उपासन करके हम प्रभु की शक्ति को प्राप्त करें।

ख. हमारा भोजन प्राणशक्ति की वृद्धि के दृष्टिकोण से हो और

ग. हम क्रियाशील होते हुए ही भोजन करें। 'श्रम तो न करें और भोजन ही करते रहें'- ऐसा नहीं करना चाहिए।

**51. स मानुषे वृजने शन्तमो हितो३ग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः।।**

ऋ. 1-128-7

उपदेश : प्रभु कृपा होने पर मनुष्य -

1. हव्य पदार्थों का सेवन करता है।
2. वेदवाणी का अध्ययन करता है।
3. शुभ कर्मों में प्रवृत्त होता है।
4. द्वेष से दूर रहता है। और
5. प्रभु की उपासना को कभी नहीं छोड़ता।

इस यज्ञशील व्यक्ति के लिए प्रभु उसी प्रकार रक्षक होते हैं, जैसे एक विजयशील राजा। वस्तुतः प्रभु ही हमारे लिए सब शत्रुओं का पराजय करके हमारा रक्षण करते हैं।

52. उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन्।।

ऋ. 1-133-1

उपदेश : काम-क्रोधादि पर हमें सब ओर से आक्रमण करना होगा तभी हम इनका संहार कर सकेंगे। सब ओर से आक्रमण का अभिप्राय यह है कि अन्नमय कोश में उपवासादि व्रतों को अपनाएँ, प्राणमय कोश में प्राणसाधना प्रारम्भ करें, मनोमय कोश में प्रभु का स्मरण करें और विज्ञानमय कोश में प्रभु की सृष्टि में प्रभु की महिमा का विवेचन करें। इस प्रकार चतुर्दिक आक्रमण होने पर ही ये शत्रु नष्ट हो पायेंगे।

53. अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम्।
छिन्धि वटूरिणां पदा महावटूरिणा पदा।।

ऋ. 1-133-2

उपदेश : क्रियाशीलता के साथ आसुर-वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। वासना-विनाश का सर्वोत्तम उपाय क्रियाशीलता ही है। क्रियाशील बनकर ही हम वासना-संहार में समर्थ हो पाते हैं। व्यापक क्रिया से अभिप्राय यह है कि हम सदा शरीर की स्वास्थ्य-सम्बन्धी क्रियाओं को, मन की नैर्मल्य-सम्बन्धी क्रियाओं को तथा मस्तिष्क की ज्ञानप्रसाद साधक क्रियाओं को करने वाले बनें। इन तीनों क्रियाओं को करने वाला 'विष्णु' त्रिविक्रम है। त्रिविक्रम ही अपने कर्म रूप सुदर्शन चक्र से वासना रूप शत्रुओं का विनाश करते हैं।

54. तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते
दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः।।

ऋ. 1-134-4

उपदेश : जीवन में अध्यात्म-विकास का आरम्भ 'प्राण-साधना' से होता है। प्राण साधना से सम्पूर्ण नाड़ी चक्र की क्रियायें ठीक से होती हैं, विशेषतः 'इडा, पिंगला व सुषुम्णा' का कार्य ठीक से होने से मूलाधार चक्र से सहस्त्रार चक्र तक सारा शरीर स्वस्थ बना रहता है। ऋतम्भरा का विकास होकर प्रकाश-ही-प्रकाश हो जाता है। इस क्रम से मनुष्य पूर्ण रूप से विकसित शक्तियों वाला बनता है।

55. यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे।
तामनु तवा नवीयसीं नियुतं राय इमहे।।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव।।3।।

ऋ. 1-138-3

उपदेश : सच्चा प्रभु भक्त बिना कर्म के खाना पसन्द नहीं करता, वह कर्म करके ही खाना ठीक समझता है। वह शरीरादि के रक्षण के हेतु से इन वस्तुओं का उपभोग करता है। उसके उपभोग का आधार स्वाद व विलास नहीं होता। स्वाद के दृष्टिकोण से न खाकर आवश्यकता के दृष्टिकोण से खाना सामाजिक कल्याण के हित में है। इन बातों को जीवन में लाना सच्चा प्रभु-स्तवन है।

56. नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः।।

ऋ. 1-148-3

उपदेश : यह स्थूल शरीर तो नश्वर है ही, सूक्ष्म शरीर भी सदा नहीं रहता। जब हम साधना करते हुए स्थूल व सूक्ष्म शरीर से ऊपर उठकर कारण शरीर में पहुँचते हैं तब वहीं प्रभु का दर्शन होता है। स्थूल शरीर में रहता हुआ मनुष्य विषय-प्रवृत्त रहता है, सूक्ष्म

शरीर में विचरने वाला ज्ञान प्रधान जीवन वाला बनता है और कारण शरीर में पहुँचने वाला व्यक्ति एकत्व का दर्शन करता हुआ प्रभु का साक्षात्कार करता है। सामान्यत: कह सकते हैं कि स्थूल शरीर में स्थित की विक्षिप्तावस्था होती है, सूक्ष्म शरीर में स्थित की 'सम्प्रज्ञात समाधि' की स्थिति होती है और कारण शरीर में स्थित पुरुष 'असम्प्रज्ञात समाधि' में पहुँच जाता है। यहाँ वह एकदम निर्विषय हुआ-हुआ प्रभु का दर्शन करता है।

57. **आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः।**
अव त्वमा सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः।।

ऋ. 1-151-6

उपदेश : प्राण साधना से जीवन ऋतमय बनता है। प्राण साधन करने वाला पुरुष -

- अनृत को छोड़ने के कारण सदा सन्मार्ग पर ही चलता है। सुमार्ग पर चलता है।
- वासनाओं से ऊपर उठकर ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाला बनता है और बुद्धि को बढ़ाता है और
- मननपूर्वक प्रभु स्तवन करने वाला बनता है।

58. **त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।**
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्।।

ऋ. 1-163-4

उपदेश : प्रभु की वास्तविक पूजा यही है कि मनुष्य -

(क) प्रकृति, जीव, परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करे।

(ख) स्वस्थ, ज्ञानी व जितेन्द्रिय बने।

(ग) काम, क्रोध, लोभ से ऊपर उठे। और

इन सबके लिए वेदों का स्वाध्याय करना परम आवश्यक है।

59. यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टु भाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद् विदुस्ते अमृतत्वमनशुः।।

ऋ. 1-164-23

उपदेश : मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों का समन्वय करना होगा। प्रभु की उपासना पवित्र कर्मों से होती है। इस प्रभु-आराधना का परिणाम आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक-तीनों दु:खों की समाप्ति के रूप में होता है। तीनों दु:खों की निवृत्ति होकर मनुष्य का जीवन सुखों से सम्बद्ध होता है। उसके शरीर, मन व बुद्धि स्वस्थ रहते हैं। सब भूतों के प्रति निर्द्वेषता के कारण निर्भयता रहती है और सब देवों की अनुकूलता होने से सब आवश्यक वस्तुएँ सुलभ रहती हैं।

60. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

ऋ. 1-164-50

उपदेश : विष्णु बनने के लिए मनुष्य यज्ञशील बने। यज्ञ की भावना है-देवपूजा= बड़ों का आदर, संगतिकरण= अपने बराबर वालों के साथ मिलकर चलना, और दान= अपने से छोटों को सदा कुछ देना। यज्ञ में ये तीन भावनाएँ हैं। देवों के कर्म इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत होते हैं।

ये तीन ही धर्म मनुष्य व व्यापक धर्म थे। इन तीन धर्मों का पालन करने वाले वे देव महिमा वाले होते हुए, अर्थात उत्तम यश को प्राप्त करते हुए निश्चय से स्वर्ग का सेवन करते हैं, अर्थात् सुखमय स्थिति में विराजते हैं। उनका यह जीवन यशस्वी व सुखी होता है।

61. **नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः।**
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक्।।

ऋ. 1-173-3

उपदेश : प्रभु को वह पाता है जो कि - (क) अपने कर्म को माप- तोलकर करता है। (ख) अपने जीवन के वर्षों के अन्त तक वानस्पतिक पदार्थों का ही सेवन करता हुआ मांस भोजनों से दूर रहता है। यह परिमित आहार-विहार वाला, शाकाहारी पुरुष प्रभु का आह्वान करने वाली इन्द्रियों वाला होता है। यह अपनी इन्द्रियों को अपना-अपना कर्म उत्तमता से करने के द्वारा, प्रभु के पूजन में लगाता है। वेदवाणियों का उच्चारण करने वाला बनता है। प्रभु से सन्देश प्राप्त करता है और उस सन्देश के अनुसार कार्य करने वाला बनता है।

62. **नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम्।**
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम्।।

ऋ. 1-180-6

उपदेश : प्राणसाधना से (क) ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में लगती हैं, कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि उत्तम कर्मों में (ख) उस समय हमारे हृदय आत्मतत्त्व को धारण करने की शक्ति वाले होते हैं, निर्मल हृदयों में हम आत्मा को प्रतिष्ठित करते हैं, (ग) हमारा मस्तिष्क पालक व पूरक बुद्धि से भूषित होता है। इस प्रकार प्राणसाधना से हमारी इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि- ये असुरों के अधिष्ठान नहीं बने रहते। इनमें असुरों से बनाये गये अधिष्ठान नष्ट हो जाते हैं। इनमें देवस्थान बन जाते हैं। इस प्रकार शक्तिशाली व त्यागशील बनकर ही हम प्रभु का पूजन कर पाते हैं। तभी हमारे जीवनों में कुछ महत्त्व प्राप्त होता है।

63. **आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान्।**
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च।।

ऋ. 1-183-3

उपदेश : शरीर में हृदय ही आत्मा का निवास-स्थान है। अतः हृदय ही ग्रह है। प्राणसाधना के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करके कुछ देर के लिए हम हृदय में ही स्थित होते हैं। यही उन्नति का मार्ग है। यह हमारी सब शक्तियों के विस्तार के लिए होता है। आत्मा की प्राप्ति के लिए होता है। प्रतिदिन प्राणायाम के अनुष्ठान से हम चित्त-वृत्ति का निरोध करके स्व-स्वरूप को देखने का प्रयत्न करें। इसी में विकास है-यही आत्म-प्राप्ति का मार्ग है।

64. **देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं व सदमिज्जास्पतिं वा।**
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात।।

ऋ. 1-185-8

उपदेश : यदि हम देवताओं के विषय में-सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल, वायु आदि देवों के विषय में कोई भी अपराध कर बैठे हैं। इनके सम्पर्क से दूर रहना, इनका ठीक प्रयोग न करना ही इनके विषय में पाप है। इस पाप का परिणाम मुख्य रूप से शरीर का अस्वास्थ्य है।

अथवा

यदि हमने सनातन सखा प्रभु के विषय में कोई अपराध किया है। प्रातः-सायं प्रभु का ध्यान न करना- प्रभु को भूल जाना ही प्रभु के विषय में पाप है। इसका मुख्य रूप से मन पर प्रभाव होता है। प्रभु के विस्मरण से मन ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि की दुर्भावनाओं से भरा रहता है।

अथवा

यदि हमने वेदवाणीरूप जाया के पति–ज्ञानी ब्राह्मण के प्रति अपराध किया है। इनके संग से दूर रहना और ज्ञान के प्रति अरुचि वाला होना–इनके विषय में अपराध है। इस अपराध से मस्तिष्क दुर्बल हो जाता है। विचारों के शैथिल्य से आचार–शैथिल्य उत्पन्न होता है। इन पापों का परिणाम ही दु:ख होता है। यदि हम इन पापों से दूर रहेंगे तो कष्टों से बचेंगे ही।

65. उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि।।

ऋ. 2-35-1

उपदेश : शक्तिरक्षण के तीन साधन हैं –

(1) प्रभु की उपासना से उसके गुणों को देखकर, उन गुणों द्वारा प्रभु का स्तवन करना और उन गुणों के धारण से अपने को शक्तियुक्त करना ही योग है–प्रभु की शक्ति से अपने को शक्ति सम्पन्न करना।

(2) इस योग के लिए अन्न का सेवन करना तथा ज्ञानवाणियों को अपनाना आवश्यक है।

(3) योगी का जीवन चार बातों वाला होता है –

(क) ब्रह्मचर्य–शक्ति को यह नहीं गिरने देता।

(ख) गृहस्थ में शीघ्रता से कार्यों को करने वाला बनता है।

(ग) वानप्रस्थ में अपने को तप व स्वाध्याय द्वारा फिर से उत्तम आकृति वाला बनाता है। और

(घ) सन्यास में स्वयं कार्य करता हुआ लोगों को क्रियामय जीवन की प्रेरणा देता है।

66. उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसृणाम्।।

ऋ. 3-1-11

उपदेश : प्रभु दर्शन उसे होता है -

(1) जो विशाल हृदय वाला है। तंग दिल वाला व काम आदि से पीड़ित हृदय वाला व्यक्ति प्रभु का दर्शन नहीं कर पाता।
(2) जिसके हृदय में वासनाओं की बाधा नहीं।
(3) जो यशस्वी कर्मों वाला है।
(4) जो अपना पालन व पूरण करता है।
(5) जो मन का दमन करता है। और
(6) जो वेद से निर्दिष्ट कर्मों में व्यापृत रहता है।

67. नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां दिदीहि।।

ऋ. 3-23-4

उपदेश : प्रभु हमें -

(क) सर्वोत्कृष्ट मानव शरीर देते हैं। इससे ऊंची योनि सम्भव नहीं। यही कर्म योनि है।
(ख) इसमें वेद ज्ञान प्राप्त कराते हैं।
(ग) उत्तम माता-पिता व आचार्य आदि के सम्पर्क वाले शुभ दिन हमें दिखाते हैं।

इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि -

(1) हम शरीर को पत्थर जैसा दृढ़ बनाएँ।
(2) मन में प्रभु प्राप्ति की भावना से सब गतिविधियों वाले हों,
(3) मस्तिष्क द्वारा सरस्वती (ज्ञानाधिष्ठातृदेवता) का आराधन करें और

(4) उचित धनार्जन करते हुए दीप्त जीवन वाले हों।

68. **अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः।**
यज्ञेषु य उ चायवः।। ऋ. 3-24-4

उपदेश : जिन घरों में माता-पिता उत्तम होते हैं, जिन बालकों व युवकों को उत्तम आचार्य प्राप्त होते हैं, जिन गृहस्थों को विद्वान अतिथियों का सम्पर्क प्राप्त होता रहता है, उनकी वृत्ति सदा उत्तम बनती है। ये प्रभु स्तवन की वृत्ति वाले होते हैं और यज्ञों द्वारा प्रभु का पूजन करते हैं।

69. **यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽ वृणीमहीह।**
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम्।।
ऋ. 3-29-16

उपदेश : इस जीवन में सारा उत्कर्ष (उन्नति) या अपकर्ष (समाप्ति) इस बात पर निर्भर करता है कि हम प्रकृति का वरण करते हैं या प्रभु का। प्रकृति का वरण हमारे अपकर्ष का कारण बनता है और प्रभु का वरण हमें उत्कर्ष की ओर ले जाने वाला होता है। कठोपनिषद के शब्दों में मन्द पुरुष प्रेय का ही वरण करता है, कोई धीर ही श्रेय का वरण करता है। इसलिए प्रार्थना की गई है-हे प्रभो! आप हमें प्राप्त होइए और निश्चय से हमारे जीवन को शान्त कीजिए।

प्रकृति के वरण में शान्ति नहीं, वहाँ उत्तरोत्तर इच्छा बढ़ती जाती है और हमारा जीवन अत्यधिक अशान्त हो जाता है। प्रभु के वरण से हमारा जीवन शान्त बनता है। इसलिए हम सौम्य-विनीत बनकर प्रभु प्राप्ति के अधिकारी बनें।

70. **इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयासि।**
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः।।
ऋ. 3-30-1

उपदेश : प्रभु-प्रेमी भक्त सात्त्विक अन्नों को धारण करते हैं-सात्त्विक भोजन को ही करते हैं। सदा श्रमशील होते हैं-इनका जीवन क्रियामय होता है। ये लोगों के अपमानजनक शब्दों को व हिंसाओं को सहते हैं। गालियों का उत्तर गालियों से नहीं देने लगते और कभी बदले की भावना से कार्यों को नहीं करते। इन लोगों के जीवनों में ईश्वर से ही कोई अद्‌भुत प्रकाश प्राप्त होता है। इनके जीवनों में ईश्वर का ज्ञान ही कार्य कर रहा होता है।

71. **प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।**
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्व सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु।।

ऋ. 3-30-6

उपदेश : मनुष्य का कोई कर्म असत नहीं होना चाहिए। इस प्रकार से सत्य को अपनाने से मनुष्य प्रभु में प्रवेश कर सकता है। प्रभु सत्यस्वरूप हैं। सत्य प्रभु को पाने का अधिकारी वही साधक बनता है जो कि सत्य को अपनाता है।

आइये! अपनी वासनाओं को विनिष्ट करके सत्य को अपनायें। यही प्रभु में प्रवेश का प्रमुख साधन है।

72. **महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः।**
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय।।

ऋ. 3-30-14

उपदेश : प्रभु ने हमारे पालन-पोषण के लिए (1) नदियों में जल की स्थापना की है जो सचमुच अमृत है, (2) गौवों में दूध दिया है। ताजा दूध अमृत तुल्य है, उसे उबाले बिना ही पीना अत्यन्त श्रेयस्कर है और (3) पृथिवी में सब स्वादिष्ट अन्नों व फलों का स्थापन किया है। वस्तुतः 'जल, दूध, अन्न व फल' आदि पर ही हमें अपना भरण-पोषण रखना चाहिये।

73. आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके।
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम्।।

ऋ. 3-30-19

उपदेश : प्रभु प्राप्ति की तुलना में धन प्राप्ति अत्यन्त तुच्छ है। अतः जब प्रभु प्राप्त होते हैं तो धन की कामना अपने आप ही समाप्त हो जाती है। प्रभु प्राप्ति से दूर रहने पर धनादि की कामना बढ़ती ही जाती है। वस्तुतः धन में तृप्ति है ही नहीं।

74. ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र।।

ऋ. 3-32-3

उपदेश : सोमरक्षण के लिए प्रथम साधन 'क्रियाशीलता' है – क्रिया में लगे रहने से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता। इस प्रकार यह क्रियाशीलता सोमरक्षण का साधन हो जाती है। सोमरक्षण का दूसरा साधन भोजन का नियम है–सौम्य भोजन हो, समय पर मात्रा में किया जाये तो सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। तीसरा साधन प्राणायाम है, इससे सोमकणों की ऊर्ध्वगति होती है।

सोमरक्षण से मानसबल बढ़कर वासनाओं का शोषण होता है।

75. महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यँरभिभूत्योजाः।।

ऋ. 3-34-6

उपदेश : प्रभु की एक-एक रचना अद्भुत है। सृष्टि के प्रारम्भ से प्रकाश देता हुआ सूर्य उसी प्रकार दीप्तिवाला है–यह प्रचण्ड सूर्याग्नि जरा भी क्षीण नहीं हो रही। पृथ्वी की उर्वरता उसी प्रकार कायम है। नदियाँ अनन्त काल से समुद्र को भरने में लगी हुई हैं।

वस्तुत: एक-एक कण में प्रभु की महिमा का दर्शन होता ही है।

प्रभु बल व शक्ति द्वारा सब पापों को पीस डालते हैं। उपासक को प्रभु शक्ति प्राप्त कराते हैं। उस शक्ति द्वारा उपासक पाप वृत्तियों को कुचलने में समर्थ होता है।

76. **युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।**
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति।।

ऋ. 3-34-7

उपदेश : देववृत्ति वाले पुरुष की दो विशेषतायें हैं -

(1) वे प्रभु का उपासन करते हैं

(2) वे काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं के साथ संग्राम में प्रवृत्त होते हैं। यह संग्राम ही वस्तुत: सात्त्विक संग्राम है। इस द्वारा हमारे में सत्त्व गुण का वर्धन होता है। इस संग्राम को करने वाले व्यक्ति ही 'सत्' कहाते हैं। वे प्रभु से रक्षित होते हैं। प्रभु इनके लिए आवश्यक धनों को प्राप्त कराते ही हैं।

77. **सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः।**
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्र मदन्त्यनु धीरणासः।।

ऋ. 3-34-8

उपदेश : बुद्धिपूर्वक प्रभु का स्तवन करने वाले लोग उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की अनुकूलता में हर्ष का अनुभव करते हैं। उपासना द्वारा जितना-जितना प्रभु के समीप होते जाते हैं, उतना-उतना आनन्द का अनुभव करते हैं।

प्रभु अन्तरिक्ष लोक को हमारे लिए देते हैं, द्युलोक को देते हैं तथा इस पृथिवी को हमारे लिए देते हैं। बाहर की त्रिलोकी को तो वे प्रभु देते ही हैं, शरीरस्थ त्रिलोकी को भी वे प्रभु प्राप्त कराते हैं। 'दृढ़ शरीर' ही पृथ्वी लोक है, निर्मल हृदय ही अन्तरिक्ष लोक

है तथा ज्ञानदीप मस्तिष्क ही द्युलोक है। इन सबके दाता प्रभु का स्तवन करते हुए स्तोता लोग आनन्द का अनुभव करते हैं।

78. **इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पती रसनोदन्तरिक्षम्।**
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिता- भिक्रतूनाम्।।

ऋ. 3-34-10

उपदेश : वह शक्तिशाली प्रभु ओषधियों को हमारे लिए देते हैं। इन ओषधियों का ठीक प्रयोग हमारे जीवनों को निरोग बनाता है।

वे प्रभु ही कार्यों को पूर्णता तक ले जाने के लिए दिनों को हमारे लिए देते हैं। वे प्रभु ही शरीर की रक्षा के लिए वनस्पतियों को हमारे लिए देते हैं। शरीर-रक्षण के लिए इन्हीं का हमें प्रयोग करना है-मांस-भोजनों का नहीं।

79. **इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।**
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः।।

ऋ. 3-35-8

उपदेश : वस्तुतः प्रभु प्राप्ति के लिए इस जीवन को परिष्कृत (स्वच्छ, सुसज्जित) बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसका परिष्कार ज्ञान-माधुर्य से होता है। 'मनुष्य ज्ञानी बने, मधुर व्यवहार वाला हो, तभी वह लोकप्रिय होता है और प्रभु कृपा से हमारा जीवन ज्ञान व प्रभु प्रिय भी माधुर्य वाला हो।

80. **इन्द्रो मधु संभृतमुस्त्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः।**
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान्।।

ऋ. 3-39-6

उपदेश : उत्कृष्ट जीवन के लिए आवश्यक है कि हम -

(1) गौधन को अपनाएँ।

(2) गोदुग्ध का सेवन करें।

(3) सात्त्विक-वृत्ति वाले बनकर दानशील हों, और

(4) रहस्यमय आत्मज्ञान को प्राप्त करें।

**81. इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ।।**

ऋ. 3-53-24

उपदेश : प्रभु ने इन्द्रियों को बाह्य विषयों के चरने के स्वभाव वाला बनाया है। इन्हें काबू रखा जाए तो ये मित्र हैं, बेकाबू हुईं तो ये भयंकर शत्रु हैं। साधक लोग प्रभु स्मरण द्वारा इन्द्रियों को वशीभूत करने वाले होते हैं।

विषयों में व्यावृत्त (निषेध, खण्डन) होते हुए हम अपना उत्तम भरण करें। इन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करें।

**82. महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन्।
यर्योर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः।।**

ऋ. 3-54-2

उपदेश : शरीर में द्युलोक मस्तिष्क है। मस्तिष्क की अर्चना/पूजा यही है कि हम अत्यन्त स्वाध्यायशील बनें।

'पृथ्वी' यह स्थूल शरीर है। इसकी अर्चना यही है कि उचित आहार-विहार द्वारा इसकी शक्ति को स्थिर रखा जाय।

जब मनुष्य समझदार होता हुआ मस्तिष्क व शरीर का ध्यान करता है-इन दोनों के विकास के लिए यत्नशील होता है तो सब उत्तम गुण उसके अन्दर पनपते हैं। यही देवों द्वारा इस मनुष्य का पूजन है।

**83. कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने।।**

ऋ. 3-54-6

उपदेश : स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। ये दोनों परस्पर पूरक हैं। शरीर मस्तिष्क का व मस्तिष्क शरीर का पूरण करता है। ये द्यावापृथिवी के समान एक दूसरे के पूरक होते हैं। जब ये एक-दूसरे का पूरण करते हैं, तभी जीव का यह उचित घर बनता है। ऐसे ही घर में वह उत्तम कर्मों को करता हुआ उन्नत हो पाता है।

84. समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम।।

ऋ. 3-54-7

उपदेश : शरीर व मस्तिष्क पृथिवी व द्युलोक की तरह अलग-अलग व दूर हैं, पर दूर होते हुए भी मिलकर कार्य करने से समीप ही हैं। जब ये दोनों जागरित व सावधान रहते हैं, अर्थात् शरीर रोगों से आक्रान्त नहीं होता और मस्तिष्क दुर्विचारों का शिकार नहीं होता तो ये उस ध्रुव पद प्रभु में स्थित होते हैं। स्वस्थ शरीर व दीप्त मस्तिष्क के होने पर हम प्रभु को प्राप्त करते हैं, यही प्रभु में स्थित होना है, ब्रह्मनिष्ट होना है।

हमें शरीर व मस्तिष्क दोनों को ही ठीक करना है। दोनों के स्वस्थ होने पर ही हम प्रभु को प्राप्त कर पायेंगे।

85. हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम्।।

ऋ. 3-54-11

उपदेश : प्रभु की वाणी को सुनने वाला वह है जो -

(क) हित रमणीय कर्मों को हाथ में लिए हुए है-सदा हितकर कार्यों में प्रवृत्त है।

(ख) अपने अन्दर सोम का सेवन करता है-वीर्य शक्ति को

उत्पन्न करने के लिए यत्नशील होता है।

(ग) सदा शोभन शब्दों को बोलता है–उत्तम जिह्वा वाला है।

(घ) अधिक से अधिक अध्ययन की वृत्ति वाला बनता है।

आइये! हम प्रभु के उपदेशों को सुनने की योग्यता प्राप्त करें।

86. देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागात्रो वोचतु सर्वताता।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम्।।

ऋ. 3-54-19

उपदेश : देवों का सन्देशवाहक वह प्रभु अनेक प्रकार से हृदयों में प्रेरणा देने वाला है।

सारा संसार हमारे लिए इस प्रकार अनुकूल हो कि हम प्रभु–प्रेरणा को सुनते हुए जीवन को निष्पाप बना पायें। इस निष्पाप जीवन में पृथिवी की तरह हम दृढ़ शरीर वाले बनें, द्युलोक की तरह दीप्त मस्तिष्क वाले हों, जलों की तरह रसमयी वाणी वाले हों सूर्य की तरह आलस्य शून्य गति वाले होकर चमकें, नक्षत्रों की तरह अपने मार्ग पर आक्रमण करने वाले हों और अन्ततः इस विशाल अन्तरिक्ष की तरह अपने हृदयान्तरिक्ष को विशाल बनाएँ।

87. वीरस्य नु स्वश्व्य जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम्।।

ऋ. 3-55-18

उपदेश : इस शरीर–रथ में पाँच पंचक (पाँच वस्तुओं का समूह) है जो इस शरीर–रथ को चलाते हैं –

पहला पंचक है–' पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश।

दूसरा पंचक है – प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान।

तीसरा पंचक है – पाँच कर्मेन्द्रियाँ (मुह, हाथ, लिंग, गुदा, पैर)

चौथा पंचक है - पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (त्वचा, आँख, कान, नाक, जिह्वा)

पाँचवा पंचक है- मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय।

उपरोक्त पाँच पंचक शरीर का वहन (भार ढोना) कर रहे हैं। इन सबकी क्रियाओं में उन सूर्यादि का प्राणशक्ति-संचार का कार्य विलक्षण है, महान है, असाधारण है, अनोखा है।

88. देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्धया।
भगस्य रातिमीमहे।। ऋ. 3-62-11

उपदेश : प्रभु से जहाँ हम धन की याचना करते हैं, वहाँ ''पालक बुद्धि'' की भी प्रार्थना करते हैं। बुद्धि के साथ धन हमारी वृत्तियों की विकृति का कारण नहीं बनता है। अन्यथा यह सम्पत्ति हमें विलास के मार्ग पर ले जाकर हमारी विपत्तियों का कारण बनती है। उस समय हम शक्ति-सम्पन्न बनने के स्थान में क्षीणशक्ति हो जाते हैं। इसलिए प्रार्थना की गई है कि प्रभु बुद्धि के साथ धन दें। बुद्धि पहले व धन पीछे।

89. स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा
सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठ यज्ञवनसम्।।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम्।।
ऋ. 4-1-2

उपदेश : प्रभु उस व्यक्ति को प्राप्त होते हैं, जो कि -

(क) कर्तव्यभार का वहन करता है।
(ख) पाप से अपने को बचाता है।
(ग) कल्याणी मति के द्वारा दिव्य गुणों की ओर चलता है।
(घ) यज्ञों का सेवन करने वाला होता है।
(ङ) सर्वोत्तम बनने का प्रयास करता है।

(च) व्यवस्थित जीवन वाला होता है।
(छ) अच्छाईयों का ग्रहण करता है।
(ज) मनुष्यों का धारण करने वाला होता है अर्थात् सदा धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होता है।
(झ) ज्ञानदीप व अपना शासक बनता है अर्थात् इन्द्रियों, मन व बुद्धि को अपने अधीन करता है।

90. स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रसुजिह्वः।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत्।।

ऋ. 4-1-8

उपदेश : 'प्रभु किसी घर को प्यार करें, किसी को नहीं'- ऐसी बात नहीं है। यह ठीक है कि उस प्रभु से दिये जाने वाले ज्ञान को कोई सुनता है और कोई नहीं। जो सुनता है, वह –
(क) दानपूर्वक अदन की वृत्ति वाला बनता है।
(ख) ज्योतिर्मय रथ वाला होता है।
(ग) रमणीय जिह्वा वाला होता है, सदा मधुर शब्द बोलता है।
(घ) प्रबुद्ध शक्ति वाला इन्द्रियाश्वों वाला होता है।
(ङ) उत्तम शरीर वाला व विशिष्ट ज्ञान दीप्ति वाला होता है।

जिस प्रकार अन्न से परिपूर्ण ग्रह सदा सुन्दर लगता है, इसी प्रकार इस व्यक्ति का जीवन भी सदा सुन्दर होता है।

91. स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन्।।

ऋ. 4-1-10

उपदेश : शरीर में सप्त धातुएँ (रस/प्लाज्मा), रक्त, मांस, मेद (वसा/फेट), अस्थि (हड्डियाँ), मज्जा (बोनमेरो) और शुक्र/वीर्य) सप्त रत्न कहलाती हैं। विशेषकर अन्तिम धातु 'वीर्य'

तो मणि नाम से ही प्रसिद्ध है। देव लोग इसे अपने अन्दर सुरक्षित रखते हैं। प्रभु कृपा से हम भी इसे अपने अन्दर सुरक्षित करने वाले हों। ज्ञानी माता-पिता इस सत्य रत्न को अपने अपने शरीरों में ही सेचन करते हुए सन्तानों को भी इसके रक्षण की प्रवृत्ति वाला बनायें।

92. **कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।**
तृष्णीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः।।

ऋ. 4-4-1

उपदेश : राजा के राष्ट्र रक्षण के लिए दो महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य होते हैं-

(क) शत्रु-सैन्य के आक्रमण को विफल करके शत्रु-सैन्य का विनाश करना तथा

(ख) अन्दर के अपराधियों को उचित दंड देना।

उपरोक्त दोनों कार्य वही कर सकता है जो कि अपना राजा हो, जितेन्द्रिय हो। ऐसा ही व्यक्ति तेजस्विता के साथ विचरता हुआ प्रजा के लिए प्रभाव वाला होता है। निस्तेज विषयासक्त व्यक्ति ने क्या शासन करना?

93. **स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य इवते ब्रह्मणे गातुमैरत।**
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत्।।

ऋ. 4-4-6

उपदेश : जो वेदज्ञान की प्राप्ति के मार्ग पर चलता है, वह शुभ बुद्धि को प्राप्त करता है। इस वेद में प्रभु ने सुमति दी है। इस सुमति को अपनाने में ही कल्याण है। जो इस सुमति को अपनाता है, इस पुरुष के लिए सब दिन उत्तम व्यतीत होते हैं। इसके लिए ऐश्वर्य होते हैं। इसे ज्ञान-ज्योतियाँ प्राप्त होती हैं। यह अपनी

इन्द्रियों का स्वामी होता हुआ सब इन्द्रिय द्वारों को विशिष्ट रूप से दीप्त करने वाला होता है।

94. अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम्।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तसो विक्ष्वीड्यम्।।

ऋ. 4-7-2

उपदेश : प्रभु के निरन्तर संज्ञान (जानना/समझना) का भाव यह है कि हम जब अन्तर्मुखी वृत्ति वाले बनकर विषयासक्ति से ऊपर उठ जाते हैं, तभी प्रभु का ग्रहण होता है। आपत्ति के समय स्वल्प-काल के लिए प्रभु का स्मरण हुआ और फिर उसे भूल गये तो इस प्रकार प्रभु का ग्रहण नहीं होता। यह आर्तभक्त (दु:खी भक्त) प्रभु का अनन्य भक्त नहीं बनता, यह प्रभु का दर्शन भी नहीं कर पाता। ज्ञानी भक्त ही अनन्य भक्ति को करता हुआ प्रभु का ग्रहण करता है।

95. ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूतस्य धामन्रणयन्त देवाः।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा।।

ऋ. 4-4-7

उपदेश : संसार के विषयों में फँसे रहना ही सोये रहना है। इस नींद से जागकर ही हम प्रभु का स्तवन करते हैं। ज्ञान के अभाव में भी स्तवन संभव नहीं, यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होने से ही प्रभु का स्तवन होता है।

वे अग्रणी प्रभु महान हैं, पूजनीय हैं। नमन के द्वारा सब हव्य पदार्थों के देने वाले हैं। हम प्रभु को नमन करते हैं। यज्ञों के लिए वे जानेवाले होते हैं। जहाँ भी यज्ञ होते हैं, वहाँ प्रभु का निवास होता है। वे प्रभु ऋत (सत्य) का रक्षण करने वाले होते हैं।

96. दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा।।1।। ऋ. 4-8-1

उपदेश : प्रभु अपने भक्तों पर आपत्ति को भेजते हैं ताकि वे धैर्य के अभ्यास में दृढ़ हो सकें। आपत्ति की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के बाद प्रभु हमें सम्पत्ति की परीक्षा में बैठने का अवसर देते हैं। प्रभु हमें खूब ही सम्पत्ति प्राप्त कराते हैं। और यदि हम उस सम्पत्ति को विषयोपभोग का साधन न मानकर यज्ञों व लोकहित के कार्यों में विनियुक्त करते हैं तो हम उस परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो जाते हैं। जो व्यक्ति लोकहित के कार्यों में अपनी आहुति देते हैं, प्रभु उन्हें जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठाने वाले हैं।

97. **त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम्।**
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम्।।

ऋ. 4-11-5

उपदेश : प्रभु स्मरण से सर्वत्र बन्धुत्व की प्रतीति होती है और द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं रहता।

प्रभु हमारे लिए सब उन्नति के स्तवन-भूत पदार्थों के देने वाले हैं। हमारे इस शरीर रूप ग्रह के वे पति हैं, वस्तुत: यह शरीर रूप गृह प्रभु का ही है, मुझे उपयोग के लिए यह प्राप्त हुआ है, मकान मालिक तो प्रभु ही है। प्रभु सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है।

98. **यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः।**
कृधी ष्व१ ष्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने।।

ऋ. 4-12-4

उपदेश : हम अज्ञानवश पाप तो कर ही बैठते हैं। प्रभु हमें ज्ञान प्राप्त कराके इन पापवृत्तियों से दूर करें। प्रभु की कृपा से ज्ञान को प्राप्त करके हम उस ज्ञानाग्नि में सब पापों को भस्म करने वाले हों। सब ओर से इन पापों का हमारे पर आक्रमण होता है। ज्ञानाग्नि ही

इन पाप रूप हिंसक पशुओं को हमारे से दूर रखती है।

नियमों का उल्लंघन करके शरीरादि को अस्वस्थ कर लेना प्रभु के विषय में पाप करना है, उस गृहपति (मकान मालिक) के मकान को ठीक रखना हमारा कर्त्तव्य है। यमों का पालन न करते हुए असत्य व्यवहार से समाज को दूषित करना मनुष्यों के विषय में पाप है। प्रभु ज्ञान द्वारा उन दोनों पापों से हमें बचाएँ। यम नियमों का पालन करते हुए हम प्रभु के प्रिय हों।

99. असिवन्यां यजमानो न होता।। ऋ. 4-17-5

उपदेश : प्रभु ही सूर्य चक्र को चलाते हैं। रात्रि में भी यज्ञशील की तरह वे प्रभु आहुति देने वाले हैं। उस प्रभु का यह सृष्टि यज्ञ दिन-रात चलता है। 'दिन में प्रभु कार्य करते हों और रात्रि में सो जाते हों' ऐसी बात नहीं है। प्रभु का यह सृष्टि यज्ञ दिन-रात चलता है। दिन में प्रभु सूर्य द्वारा ब्रह्माण्ड को प्रकाश कराते हैं तो रात्रि में चन्द्रमा की ज्योत्सना को करने वाले हैं।

100. आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात्।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्परावतो वा सदनादृतस्य।।3।।

ऋ. 4-21-3

उपदेश : जब हम शरत् की अमावस्या के दिन द्युलोक को अनन्त नक्षत्रों से जगमगाता देखते हैं तो उस रचयिता का स्मरण हो उठना स्वाभाविक है। यही द्युलोक से प्रभु की प्राप्ति का भाव है।

ये प्रभु पृथ्वी से हमें प्राप्त हों। विविध वनस्पतियों को जन्म देन वाली यह पृथ्वी सचमुच प्रभु का स्मरण कराती है। अनन्त प्रकार की फलों की गन्ध उस प्रभु की गन्ध क्यों न देगी।

वे प्रभु इस अन्तरिक्ष से हमें प्राप्त हों अथवा वे प्रभु अन्तरिक्षस्थ मेघों के जल से हमें प्राप्त हों। अन्तरिक्ष में गति करते

हुए मेघ एक सहृदय पुरुष को प्रभु का स्मरण कराते ही हैं। इनसे बरसने वाला जल सारी पृथिवी को आप्लावित करता हुआ हृदय में प्रभु के भाव को जागरित करता है।

द्युलोकस्य सूर्य अपनी किरणों द्वारा हमारे में प्राण शक्ति का संचार करता हुआ हमारा रक्षण करता है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष से प्राप्त होने वाले ये मेघ जल हमारे लिए अमृतत्व (नीरोगता) को प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार प्रभु सूर्य व वृष्टिजलों द्वारा हमारा रक्षण करते हैं। इस सारी प्रक्रिया का विचार करते हुए उस प्रभु की अद्‌भुत महिमा का ध्यान आता है, यही प्रभु की प्राप्ति है।

101. अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै।

ऋ. 4-22-7

उपदेश : वासना का पर्दा पड़ जाने पर हमारे जीवन में ज्ञान आवृत (छिप जाना) हो जाता है–हम प्रभु को भूल जाते हैं। प्रभु कृपा से जब यह आवरण हटता है तभी ज्ञान का प्रवाह ठीक से फिर बहने लगता है। इस ज्ञान प्रवाह में हमारा जीवन शुद्ध हो जाता है और हम प्रभु का दर्शन करने योग्य बनते हैं। हमारी चित्तवृत्ति संसार के विषयों में न फंसकर फिर से प्रभुप्रवण (झुकना) हो उठती है।

102. कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय।।

ऋ. 4-23-1

उपदेश : जीवन में अवनति का कारण अपवित्र आहार व अपवित्र धन ही होता है। आहार व धन की पवित्रता उसके उत्थान का साधन बनती है। हम पवित्र साधनों से धनार्जन करते हुए यज्ञादि उत्तम कर्म करें। यही प्रभु की प्राप्ति करने का मार्ग है।

103. किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः।।

ऋ. 4-23-6

उपदेश : हम जितना-जितना प्रभु की प्रेरणा में चलेंगे, उतना-उतना ही अधिक और अधिक शोभा वाले बन पायेंगे। हम अपने इस शरीर को प्रभु का शरीर बनाएँ। ऐसा करने से यह सूर्य के समान दीप्ति वाला बनेगा। हृदय में प्रभु को आसीन करते ही यह शरीर प्रभु का शरीर बन जाता है।

104. को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती।।

ऋ. 4-24-2

उपदेश : कोई विरल व्यक्ति ही विचारपूर्वक क्रियाओं को करने वाला होता है। यह मनायु ही ज्ञानरश्मियों को धारण करता है। प्रभु के प्रति नमन 'उपासना काण्ड है, ज्ञानपूर्वक कर्मों को करना 'कर्मकाण्ड' है। ज्ञानरश्मियों का धारण 'ज्ञानकाण्ड' है। इस प्रकार यह व्यक्ति तीनों काण्डों को अपने जीवन में समन्वय करता है।

कोई विरला व्यक्ति ही उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के मेल को चाहता है। कोई व्यक्ति ही प्रभु का सखा बनने की कामना वाला होता है। कोई विरला पुरुष ही उस प्रभु के साथ भ्रातृत्व की कामना करता है। कोई ही उस क्रान्तदर्शी प्रभु के लिए अपने कर्मों द्वारा तर्पण वाला होता है। उसकी सदा यही कामना होती है कि मैं इस प्रकार से कर्म करूँ कि प्रभु का प्रिय बन पाऊँ।

105. को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम्।।

ऋ. 4-25-3

उपदेश : सामान्यतः मनुष्य संसार के भोगों में फँस जाता है, दिव्य गुणों के रक्षण का उसे ध्यान नहीं रहता। कोई विरला पुरुष ही सब स्थानों से अच्छाई ग्रहण (आदान) की भावना को, स्वास्थ्य को और प्रकाश को उपासित करता है। सामान्यतः मनुष्य बुराई को ही देखता है-अच्छाई को देखने का प्रयत्न ही नहीं करता। स्वाद आदि में फँसकर स्वास्थ्य को खो बैठता है और ज्ञान प्राप्ति की ओर झुकाव वाला नहीं होता।

कोई विरला व्यक्ति ही प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है, कोई ही इन्द्रियों के वश करने में यत्नशील होता है, कोई पुरुष ही सदा आगे बढ़ने की मनोवृत्ति वाला बनता है। 'प्राणायाम, जितेन्द्रियता व अग्रगति की भावना' ये तीनों बातें सोमरक्षण की साधन बनती हैं।

106. श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च।।

ऋ. 4-29-3

उपदेश : जितना-जितना हम प्रभु के निर्देशों को सुनते हैं और पालते हैं, उतना-उतना हमारा जीवन आनन्दमय बनता है।

अत्यन्त सुखों का हमारे पर वर्षण करता हुआ प्रभु हमारे लिए 'उत्तम माता-पिता आचार्य' रूप तीर्थों को, कर्मफल व्यवस्था के अनुसार, प्राप्त कराते हैं और इनके द्वारा निर्भयता को प्राप्त कराते हैं। माता हमारे चरित्र का निर्माण करती है, पिता आचार का तथा आचार्य ज्ञान का निर्माण करता है। इस प्रकार सच्चरित्रता, सदाचार व ज्ञान हमारे जीवन को निर्भय बनाते हैं।

107. ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौस्या।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः।। ऋ. 4-32-11

उपदेश : जब हम शरीर में सोमरस का सम्पादन करते हैं- वीर्य

का उत्पादन व रक्षण करते हैं तो प्रभु की व्यवस्था के अनुसार न केवल रोग-कृमियों का ही संहार होता है, अपितु वासनाओं का विनाश होकर मन भी पवित्र हो जाता है। उस समय हम स्वभावतः प्रभु का स्तवन कर उठते हैं कि कितनी ही अद्‌भुत उस प्रभु द्वारा होने वाली रचना व व्यवस्था है?

108. ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोपयात।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः।।

ऋ. 4-34-1

उपदेश : जीवन को उत्तम बनाने वाले 4 तत्त्व हैं - (क) दीप्त मस्तिष्क (ख) विशाल हृदय (ग) शक्ति और (घ) जितेन्द्रियता। इन तत्त्वों की प्राप्ति के लिए सोम का रक्षण करें, तब ही जीवन उल्लासमय बनेगा।

109. ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः।।

ऋ. 4-34-9

उपदेश : जीवन निर्माण के लिए आवश्यक है कि -

(क) प्राण साधना करें, (ख) माता-पिता को देव मानें, (ग) वेद वाणी रूप गौ का दोहन करें (घ) कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को प्रशस्त बनाएँ, (ङ) ब्रह्मज्ञान रूप कवच का धारण करें और (च) मस्तिष्क व शरीर दोनों के निर्माण का ध्यान करें।

110. इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः।।

ऋ. 4-35-1

उपदेश : प्रभु प्राप्ति के तीन साधन हैं- (क) ज्ञानदीप्ति (ख) शक्ति का संचय व (ग) ओ३म् के जप से चित्तवृत्ति निरोध।

वस्तुत: जीवन का प्रथम सवन (ब्रह्मचर्य आश्रम) उतनी सुबोधता का नहीं होता। माध्यन्दिन सवन (गृहस्थ आश्रम) गृहस्थ के बोझ में दबा सा रहता है। अब तृतीय सवन (वानप्रस्थ आश्रम) अध्यात्म उन्नति के लिए सर्वथा अनुकूल होता है। इस समय सोम का रक्षण करते हुए हम आगे और आगे बढ़ते चलते हैं। प्रभु का सान्निध्य करते हुए प्रभु के आनन्द से आनन्दित हो पाते हैं।

111. किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य।।

ऋ. 4-35-4

उपदेश : वेद में मानव जीवन को चार मंजिलों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास) में बांटकर बिताने का उपदेश हुआ है। जब हम उस प्रभु के महान काव्य वेद के अनुसार जीवन को इस प्रकार चार भागों में बाँटकर चलते हैं तो जीवन आनन्दमय बना रहता है। जीवन यात्रा अच्छी निभती है।

112. ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येनाइवेदधि दिवि निषेद।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः।।

ऋ. 4-35-8

उपदेश : मोक्ष प्राप्ति का मार्ग यह है -

(क) उत्तम कर्मों द्वारा देव बनें।
(ख) प्रशंसनीय गति वाले व ज्ञान की रुचि वाले हों।
(ग) रत्न (मणि-सोम) का धारण करें।
(घ) शक्ति को नष्ट न होने दें और
(ङ) प्रणव (ओ३म्) का जप करें।

113. तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम्।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ।।

ऋ. 4-36-3

उपदेश : सामान्यत: आयु बढ़ने के साथ शक्तियों में क्षीणता आने लगती है। मस्तिष्क भी उतना काम नहीं करता, शरीर भी शिथिल हो जाता है। पर यदि हम जीवन के प्रात: सवन (ब्रह्मचर्य आश्रम) से ही सोम पान का ध्यान करें, विशेषत: इस तृतीय सवन (वानप्रस्थ आश्रम) में सोमपान का पूरा ध्यान करें तो हमारे ये मस्तिष्क व शरीर फिर से युवा हो जाते हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य यही है। विद्वान लोग इस कार्य के महत्त्व का ही शंसन करते हैं। यह कार्य ही हमें ऋभु (ज्ञानदीप्त मस्तिष्क वाला), विभ्वा (विशाल हृदय वाला) व वाज (शक्ति सम्पन्न शरीर वाला) बनाता है।

114. उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्।।

ऋ. 4-38-5

उपदेश : यदि मन हमारे वश में न हो तो विनाशक ही होता है। इसको वश में करने के लिए साधक प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु कृपा से ही यह वशीभूत होता है।

यहाँ एक ओर 'मन' है, दूसरी ओर 'इन्द्रिय समूह'। दोनों के बीच में 'ज्ञान'। प्रभु को इन तीनों चीजों का लक्ष्य करके पुकारते हैं। प्रभुकृपा से मन व इन्द्रिय समूह हमारे वश में हुआ, तो ज्ञान तो प्राप्त होगा ही। मन इधर-उधर भटकता है। वस्तुत: भटकता हुआ यह हमारी सब अध्यात्म-सम्पत्ति को चुरा ले जाता है। इन्द्रियाँ भी विषयों में फँस जाती हैं। ये ज्ञानग्रहण व यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त नहीं रहतीं। प्रभु की उपासना ही हमें इन्द्रियों व मन के साथ चलने वाले इस संग्राम में विजयी बनाती हैं। तभी हमें ज्ञान प्राप्त होता है।

115. यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः।।

ऋ. 4-39-3

उपदेश : मन अश्व है-शीघ्रता से देश-देशान्तर का व्यापन करने वाला है। यह दधिक्रावा है-हमारा धारण करता हुआ जीवन-मार्ग में आगे बढ़ता है। हमें चाहिए कि हम उषा होते ही यज्ञादि उत्तम कर्मों में इसे प्रवृत्त करें। यही इसका स्तवन है, यही इसे विषयों से बचाने का मार्ग है। यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहने पर यह 'अदिति' बनता है और हमें निष्पाप बनाता है।

116. अस्माकमत्र पितरस्त आसन्तसप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम्।।

ऋ. 4-42-8

उपदेश : मन को वश में कर लेने पर इस जीवन में हमारे वे शरीरस्थ सात ऋषि-दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख पालक हो जाते हैं। मन के वशीभूत न होने पर ये इन्द्रियाँ विषयों में फँस जाती हैं। इसके वशीभूत हो जाने पर ये ही ज्ञान को प्राप्त कराती हुई हमारा रक्षण करने वाली होती हैं और प्रभु से हमारा मेल कराने का साधन बनती हैं।

117. यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम्।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति।।

ऋ. 5-4-11

उपदेश - सामान्यतः ऐश्वर्य में यही कमी है कि (क) सन्तानें अधिक लाड़-प्यार में पलने से बिगड़ जाती हैं, (ख) मनुष्य स्वयं कम काम करने से कमजोर हो जाता है, (ग) भोग विलास की वृद्धि से इन्द्रियाँ 'विषयपंक मलिन' हो जाती हैं, पर पुण्यशाली को

प्रभु पवित्र रयि (ऐश्वर्य) प्राप्त कराते हैं जो कि उसे पवित्र पुत्रों वाला प्रकृष्ट बल वाला व प्रशस्तेन्द्रिय बनाता है।

118. ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन्।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नृञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः।।

ऋ. 5-15-2

उपदेश : प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम (क) ऋत का पालन करें अर्थात् सब कार्यों को नियमित रूप से करें, (ख) यज्ञात्मक कार्यों से भोगवृत्ति से ऊपर उठने के द्वारा, हम अपने को शक्तिशाली बनायें और (ग) उत्तम पुरुषों के संग में रहें जो कि जन्म-मरण चक्र से ऊपर उठने वाले हैं, जीवन्मुक्त हैं। इन लोगों का संग हमारे जीवनों को पवित्र बनाता है और हम प्रभु को प्राप्त करते हैं।

119. ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां स धस्तुति।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम्।।

ऋ. 5-19-5

उपदेश - वैदिक संस्कृति में पच्चीस वर्ष तक माता, पिता व आचार्य देव होते हैं। ये एक बालक को चरित्रवान, सदाचारी व शिक्षित करके एक सुन्दर युवक बना देते हैं। अब पचास वर्ष तक समय-समय पर आने वाले अतिथि उस युवक के जीवन को प्रशस्त बनाये रखने का ध्यान करते हैं। इस आश्रम में ये अतिथि ही देव होते हैं। पचास वर्ष के बाद एक वनस्थ प्रभु को ही अपना देव बनाता है। प्रभु माता, पिता, आचार्य व अतिथि आदि देवों के ज्ञान का वर्धन करें ताकि ये अपने कार्यों को अधिक सौन्दर्य से कर सकें।

120. **आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे।**
वृणीध्वं हव्यवाहनम्।। ऋ. 5-28-6

उपदेश - जीवन को हमें यज्ञात्मक बनाना ही चाहिए। प्रभु के प्रति अर्पण करके ही जीवन में चलना चाहिए। उस प्रभु की ही उपासना करो-यह प्रभु का उपासन ही हमें शक्तिशाली बनाता है। सब हव्य पदार्थों के देने वाले उस प्रभु का वरण करो। प्रकृति के वरण की अपेक्षा प्रभु का वरण ही कल्याणकर है। प्रकृति वरण में हम प्रभु से दूर हो जाते हैं और प्रकृति के पाँव तले कुचले जाते हैं। प्रभु वरण में जीवन पवित्र बना रहता है और प्रकृति हमारी सेविका बनी रहती है।

121. **स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम्।**
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य।।
ऋ. 5-29-11

उपदेश - ज्ञानी पुरुष स्वार्थ से ऊपर उठता है। ज्ञान की कमी ही मनुष्य को स्वार्थी बनाती है। यह स्वार्थी पुरुष छलछिद्र से चलता है-इसका जीवन कुटिल होता है। इसके विपरीत ज्ञानी पुरुष प्रभु का मित्र बनता है। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सम्बद्ध पाँच ज्ञानों के परिपाक को करता है। इस परमात्मा से उत्पन्न किये हुए सोम को पीता है। सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखता है। यह सोमरक्षण ही उसे 'दीप्त ज्ञानाग्नि वाला- स्वार्थ से ऊपर - प्रभु का मित्र बनाता है।

122. **न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन।**
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे।।
ऋ. 5-34-5

उपदेश - जो अपने पाँचों प्राणों से तथा दसों इन्द्रियों से

कर्म करने की कामना नहीं करता, अर्थात् जो आलस्य में पड़ा रहता है, उस यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को न करने वाले धन सम्पत्ति के दृष्टिकोण से खूब पुष्ट मनुष्य के साथ प्रभु मेल नहीं होते। प्रभु आलसी, धनी परन्तु अयज्ञशील पुरुष के मित्र नहीं बनते। मित्र बनना तो दूर रहा, प्रभु इन्हें निश्चय से क्षीण करते हैं। निश्चय से उसको तो नष्ट ही कर डालते हैं। इनके विपरीत दिव्य गुणों की प्राप्ति की कामना वाले मनुष्य को उत्तम ज्ञानधेनुओं वाले बाड़े में भागी बनाते हैं।

123. इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत।। ऋ. 5-41-17

उपदेश – सामान्यतः मनुष्य धार्मिक प्रवृत्ति वाला होने पर भी प्रजा व पशुओं में ही उलझा रह जाता है और प्रभु की उपासना का स्थान उसके जीवन में भिन्न-भिन्न देवों का उपासन ही ले लेता है। चाहिये तो यह कि हम जीवन-यात्रा में गृहस्थ में उत्तम प्रजाओं का निर्माण करके अब उससे ऊपर उठने का प्रयत्न करें। हमारी वृद्धावस्था भी इस गृहस्थ में ही न समाप्त हो जाये।

हम जीवन के अन्त तक पुत्र-पौत्रों में ही उलझे रहेंगे तो यह कल्याण का मार्ग नहीं है। गृहस्थ से ऊपर उठकर हमें वनस्थ होना ही चाहिये और सतत प्रभु के स्मरण के आनन्द को लेने का प्रयत्न करना चाहिये। यह प्रभु-स्मरण हमें सशक्त व स्वस्थ शरीर वाला बनाकर लोकहित के कार्यों को करने के योग्य बनायेगा।

124. प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः।।
ऋ. 5-42-1

उपदेश – वेदवाणी हमारे जीवन को शान्त व शक्तिमय बनाती है। यह हमें 'निर्देषता, मित्रता, पवित्र धन व व्रतपालन' वाला करती है। इससे हम सोमरक्षण करते हुए, ज्ञान में प्रवृत्त होकर, मार्ग में चलते हुए, शक्ति–सम्पन्न व सबका कल्याण करने वाले बनते हैं।

**125. प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः।।**

ऋ. 5-42-13

उपदेश – प्रभु ने यह सृष्टि इसी उद्देश्य से बनायी है कि जीव इसमें आकर, सब साधनों से सम्पन्न होकर, वासनाओं में न फँसे और वेदज्ञान का अपने में वर्धन करता हुआ उत्कृष्ट रूप वाले जीवन का निर्माण करे।

प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम बुद्धि का सम्पादन करके ज्ञान को प्राप्त करें।

**126. आ धर्णसिबृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः।।**

ऋ. 5-43-13

उपदेश – प्रभु का उपासन करने से ही हमारा जीवन उत्कृष्ट (श्रेष्ठ, उत्तम) बनता है। प्रभु ही धारक हैं, प्रकाशक हैं, सर्वप्रद हैं, सब प्रकार से रक्षा करने वाले हैं। हमारे लिए वेदवाणियों को (मस्तिष्क के लिए) व ओषधियों को (शरीर के लिए) प्राप्त कराते हैं। शरीर, मन व बुद्धि के दृष्टिकोण से हमें उन्नत करके सुखी व सुन्दर बनाते हैं।

**127. यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः।
नमृणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता।।** **ऋ. 5-50-4**

उपदेश – उत्तम घर वह है जहाँ कि –

(क) यज्ञ नियमपूर्वक होते हैं।

(ख) खूब दूध देने वाले पशु (गौ) विद्यमान हैं।

(ग) जहाँ मनुष्यों के निर्माण का ध्यान है अर्थात् जहाँ सब सन्तानों के निर्माण पर पूरा ध्यान दिया जाता है। व्यर्थ की चीजों पर झुकाव नहीं होता।

(घ) जहाँ सब वीर हैं और

(ङ) जहाँ प्रभु का भजन करने वाला व संविभागपूर्वक खाने वाला होता है।

128. **वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये।**
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः।। ऋ. 5-51-5

उपदेश – प्रभु–उपासना से ही अन्धकार नष्ट होता है। प्रीतिपूर्वक कर्मों को करते हुए हम सदा दानशील हों। भोगवृत्ति से ऊपर उठकर सोम का पान करें, यही आनन्द प्राप्ति का मार्ग है।

129. **प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।**
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत।।

ऋ. 5-54-1

उपदेश – प्राण साधना से (क) आत्म ज्ञान की दीप्ति प्राप्त होती है, (ख) अविद्या नष्ट होती है, (ग) शरीर में शक्ति का उचित संरक्षण होता है, (घ) जीवन यज्ञमय बनता है और देदीप्यमान ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

130. **यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।**
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम।।

ऋ. 5-60-6

उपदेश – प्राण साधना ही 'प्रकृति, जीव व परमात्मा' के

ज्ञान में साधन बनती है। प्राण साधना व प्रभु-स्मरण ही, हमारे जीवन को यज्ञमय बनाते हैं। 'ब्रह्मज्ञान' उत्तम द्युलोक है, 'जीवविज्ञान' मध्यम द्युलोक है और प्रकृति 'विज्ञान' ही अवम द्युलोक है।

131. क्व१वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः।। ऋ. 5-61-2

उपदेश - प्राणों के कार्यक्रम को पूरा-पूरा समझ सकना सम्भव नहीं। हमें सामान्यतः इनके विषय में इतना ही पता है कि प्रत्येक इन्द्रिय के कार्य के मूल में इनका अनिष्ठान है। प्राणों के आधार से ही सब कार्य चलते हैं और नासिका छिद्रों में आपका नियमन होता है। जिस समय नासिका के दक्षिण छिद्र में आपकी गति होती है तो अग्नि तत्त्व का वर्धन होता है, वामछिद्र में गति होने पर जलतत्त्व का विकास दिखता है एवं अग्नि व जल दोनों तत्त्वों का ठीक-ठीक नियमन करते हुए ये प्राण हमारे जीवन को सुन्दर बनाते हैं। ये दायें-बांये छिद्र ही योग में सूर्यस्वर व चन्द्रस्वर कहलाते हैं।

132. वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः।। ऋ. 5-65-5

उपदेश - स्नेह की भावना हमारे जीवन का रक्षण करती है। स्नेह हमें पाप की ओर नहीं ले जाता। ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध के कारण ही सामान्यतः पापों को जन्म मिलता है और हम परस्पर विरोध में लड़ने वाले हो जाते हैं।

निर्द्वेषता हमें परस्पर समीप लाती है। निर्द्वेषता में ही झगड़ों का अभाव होकर सब प्रकार की उन्नति है।

133. **त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि।**
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम्।।
ऋ. 5-69-1

उपदेश - स्नेह व निर्द्वेषता से हमें (1) 'प्रकृति, जीव, परमात्मा' का त्रिविध ज्ञान प्राप्त होता है। (2) हम बाल्य, यौवन, वार्धक्य में चलते हुए पूर्ण जीवन को प्राप्त करते हैं। (3) हमारे स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीनों शरीर ठीक रहते हैं। (4) हमें क्षात्रबल प्राप्त होता है (जिसमें कोई अवगुण, दोष व बुराई न हो) और हम अजीर्ण शक्ति बने रहते हैं।

134. **यथा वातः पुष्करिणी समिङ्गयति सर्वतः।**
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः।। ऋ. 5-18-7

उपदेश - एक युवती यदि प्राणसाधना में चलती है तो उसे सन्तान को जन्म देने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। प्राण साधना उसके जननाङ्गों के समुचित विकास को करने वाली बनती है। गर्भस्थ बालक का पोषण भी इस प्राणसाधना से ठीक रूप में होता है।

135. **उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः।**
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुकैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते।।
ऋ. 5-79-8

उपदेश - हम उषा में प्रबुद्ध होकर, नित्य कार्यों से निवृत्त होकर, सूर्योदय होते ही सन्ध्या में स्थित हों तथा अग्निहोत्र करने वाले बनें। यह जीवन हमें ज्ञान प्रवण करेगा और प्रभु प्रेरणा को सुनने योग्य बनायेगा।

136. **अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे।**
विश्वा वामानि धीमहि।। ऋ. 5-82-7

उपदेश – वस्तुतः जिस राष्ट्र में पाप बढ़ जाते हैं, वे विनाश की ओर ही जाते हैं। इस प्रकार निष्पाप जीवन से राष्ट्र को अखण्डित रखते हुए हम सब सुन्दर चीजों को धारण करें। राष्ट्र के रक्षक हों। हमारे अशुभ आचरण दूर हों और अशुभ परिणाम भी दूर हों।

137. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः।।

ऋ. 5-83-2

उपदेश – प्रभु स्मरण से रोग व राक्षसी भाव विनष्ट हो जाते हैं। यह उपासक शक्तिशाली शत्रुओं को भी शीर्ण करता है। प्रभु की ज्ञानवाणियाँ उसे ऐसा करने में समर्थ करती हैं।

138. सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे।।

ऋ. 6-2-3

उपदेश – प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि – (1) हम मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्य करें, (2) प्रकाश वाले हों, ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वाध्यायशील हों, (3) उन्नति-पथ पर आगे बढ़ें, (4) सबका भला चाहें, (5) प्रभु-स्तवन की ओर हमारा झुकाव हो, और (6) यज्ञशील बनें।

139. वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम्।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः।।

ऋ. 6-4-4

उपदेश – प्रभु ही वेद द्वारा हमें मार्ग की प्रेरणा देते हैं। यज्ञशील पुरुषों के घर में प्रभु का वास होता है। प्रभु ही उपासकों को उत्तम ग्रह व अन्न प्राप्त कराते हैं। शक्ति देते हैं, शत्रुओं को

परास्त करते हैं और हमारे लाभरहित हृदय में निवास करते हैं।

140. **शचीवतस्ते पुरुषाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः।**
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन्।।

ऋ. 6-24-4

उपदेश - प्रभु के शक्तिशाली कर्म चारों ओर दृष्टिगोचर होते हैं। प्रभु की व्यवस्थाएँ, किसी से प्रतिबद्ध न होते हुए (बिना किसी रूकावट) सभी को नियमों में बाँधने वाली हैं।

141. **अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः।**
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः।।

ऋ. 6-31-1

उपदेश - प्रभु ही शासक हैं, धनों के स्वामी हैं। सब मनुष्य 'उत्तम पुत्रों, कर्मों, पौत्रों व शत्रुकम्पन आदि कार्यों' के निमित्त प्रभु का ही विविध वाणियों से स्तवन करते हैं। प्रभु ही उचित धनों को प्राप्त कराके हमें उत्तम सन्तानादि को प्राप्त करने में क्षम (समर्थ) करते हैं।

142. **अयं रोचयदरुचो रुचानो३ऽयं वासयद् व्यृ१ तेन पूर्वीः।**
अयमीयत ऋतयुग्भिश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः।।

ऋ. 6-39-4

उपदेश - प्रभु ही सूर्योदय द्वारा सब लोकों को प्रकाशित करते हैं, प्रभु ही उषा कालों को अन्धकारशून्य करते हैं। ये प्रभु ही ऋत से मेल वाले, यज्ञ प्रवृत्त, इन्द्रियाश्वों को व सुदृढ़ शरीरों को प्राप्त कराके मनुष्यों का पूरण (पूर्ति करना) करते हैं।

143. **अयं स यो व रिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः।**
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम्।

ऋ. 6-47-4

उपदेश – प्रभु ही पृथिवी को विशाल बनाते हैं, द्युलोक को सर्वलोक बन्धन के सामर्थ्य वाला करते हैं। प्रभु ही 'ओषधि, जल व गौवों में अमृतत्व को धारण करते हैं। विशाल अन्तरिक्ष को धारण करते हैं।

144. सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते।।

ऋ. 5-48-22

उपदेश – प्रभु के ज्ञान व बल से प्रकृति के द्वारा इस द्युलोक का निर्माण हुआ और वैसा ही निर्माण सदा से होता चला आ रहा है। इसके निर्माण में अगली-अगली सृष्टि में कोई उत्कर्ष व सुधार कर दिया जाता हो, सो बात नहीं है।

प्रथम रचना में कमी के अनुभव होने पर, उसके दूर करने के लिए, यत्न होते हैं। मानव रचनाओं में ऐसा होता ही है। प्रति वर्ष मोटर इंजन का नया रूप (New Model) हमारे सामने आता है। मानव ज्ञान की अपूर्णता से ऐसा होता ही है, परन्तु प्रभु तो पूर्ण है, सो उनकी रचना भी पूर्ण है 'पूर्णमदः पूर्णमिदम'। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। अतः प्रभु की बनाई हुई सृष्टि पूर्ण है, परिवर्तन की अपेक्षा नहीं रखती। प्रभु से दिया हुआ ज्ञान भी पूर्ण है, वह भी परिवर्तनापेक्षी नहीं।

145. वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्।।

ऋ. 5-51-2

उपदेश – विप्र (कर्मनिष्ठ व धार्मिक व्यक्ति) वह है जो-

(1) जीव के लिए 'ज्ञान, कर्म, उपासना' का ज्ञान प्राप्त करता है और कराता है।

(2) सूर्य आदि देवों के जन्म को समझता है।
(3) पुण्य-पाप का विवेक कर पाता है और
(4) गन्तव्य मार्गों का उपदेश देता है।

146. त्व अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम्।।

ऋ0 7-16-1

उपदेश - प्रभु के प्रिय वे व्यक्ति होते हैं जो -
(1) प्रभु के ज्ञानी भक्त बनते हैं।
(2) धनी होते हुए दानशील होते हैं तथा
(3) इन्द्रियों का रक्षण करते हैं-इन्द्रियों को विषयों में भटकने नहीं देते।

147. एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।

ऋ. 7-26-6

उपदेश - यज्ञ करने से राष्ट्र समृद्ध बनता है। यज्ञ द्वारा प्रजा नीरोग व स्वस्थ रहकर सुखी बनती है। पर्यावरण प्रदूषण रहित होने से अन्नादि की उत्पत्ति दोष रहित होकर राष्ट्र समृद्ध होता है।

148. अरं दासो न मीहुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति।।

ऋ. 7-86-7

उपदेश - मनुष्य पाप रहित होकर ही परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए परमात्मा प्रदत्त आत्मा में जो प्रेरणा होती है उसे सुनकर ही जीव पाप रहित हो सकता है। वह प्रेरणा है-लज्जा, भय, शंका व आनन्द, उत्साह, निर्भयता।

149. आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान्।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि।।

ऋ. 7-87-2

उपदेश - समस्त लोक-लोकान्तरों का संचालन ईश्वर अपनी परमेश्वरी शक्ति से करता है। विश्व का भरण-पोषण भी वही करता है। उसी का तेज सूर्य आदि में चमक रहा है। यह सब उसकी व्यापकता से ही सम्भव है।

150. ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत्।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।

ऋ. 7-88-7

उपदेश - जीव कर्म के अनुसार भोग व भूमियों को भोगता हुआ ऊँची व नीची योनियों में जाता है। दु:ख और सुख को भोगता है। किन्तु जब वह परमेश्वर की रक्षा व प्रेम का अनुभव करने लगता है तो ईश्वर उसको कर्मपाश= बन्धन से मुक्त कर देता है।

151. न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्त दाधर्थ प्राची ककुभे पृथिव्याः।।

ऋ. 7-99-2

उपदेश - वह जगदीश्वर अजन्मा है। उसका सामर्थ्य अनन्त है। वह मोक्ष का अधिपति है तथा आकाश, भूमि व समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता है। मूल प्रकृति में प्रेरणा करके विकृति उत्पन्न करता है, अर्थात् इस महान सृष्टि को रचता है।

152. वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार।।

ऋ. 7-100-4

उपदेश - उस व्यापक परमेश्वर ने इस भूमि को बसने के

योग्य बनाकर जीवों के लिए दान दी है। फिर सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्न, औषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तुओं को भी बनाता है। ऐसे दानी प्रभु की स्तुति किया करो।

153. येभिस्तिस्त्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना।
त्रींरक्तून्परिदीयथः।। ऋ. 8-5-8

उपदेश - प्राण साधना से (क) प्रकृति, जीव, परमात्मा का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है, (ख) शरीर, मन, बुद्धि दीप्त हो उठते हैं, (ग) काम-क्रोध-लोभ रूप अन्धकार विनष्ट हो जाते हैं।

154. विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये।। ऋ. 8-7-25

उपदेश - प्राणसाधना से-

(क) हाथ विद्युत के समान शीघ्रता से कार्यों को करते हैं।
(ख) शरीर सब ओर दीप्ति वाला और तेजस्वी बनता है।
(ग) मस्तिष्क में ज्ञानरूपी शिरस्त्राण की स्थापना होती है और
(घ) इन साधकों के हृदय निर्मल होते हैं।

155. यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे।
अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः।। ऋ. 8-12-17

उपदेश - प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि -

(1) हम पराविद्या में रुचि वाले हों।
(2) सदा आनन्दमय रहें और
(3) सोम को अपने अन्दर सुरक्षित करने के लिए यत्नशील हों।

156.(ए) याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम्।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः।।
ऋ. 8-20-24

उपदेश – प्राणसाधना से

(क) ज्ञान की वृद्धि होती है। (ख) रोगरूप शत्रुओं का हिंसन होता है। (ग) क्रियाशीलता की वृद्धि होकर शक्ति की वृद्धि होती है। (घ) काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का हमारे साथ सम्बन्ध नहीं रहता।

156 (बी) प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति।
क्रत्वा सधस्थमासदत्।। ऋ. 9-16-4

उपदेश – ज्ञान में लगे रहने से हम विषयों से बचे रहते हैं, इस प्रकार हमारा जीवन पवित्र रहता है और हम प्रभु का दर्शन करने वाले होते हैं।

157. अयं दिव इयर्ति विश्वसा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।
अद्भिगोर्भिर्मृज्यते अद्रिभिः सुत पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम्।।
ऋ. 9-68-9

उपदेश – शरीर में सुरक्षित सोम –

(क) ज्ञान को हमारे में प्रेरित करता है, (ख) हृदय को पवित्र बनाता है, (ग) शरीर को सब कलाओं से पूर्ण करता है, (घ) प्रिय धन को प्राप्त कराता है। इस सोम का रक्षण-कर्मों में लगे रहने से, स्वाध्याय से तथा उपासना से होता है।

158. सहस्त्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः।।
ऋ. 9-73-4

उपदेश – प्रभु-भक्त सदा उपासना व स्वाध्याय में प्रवृत्त होता है। मधुर वाणी वाला, अनासक्त, प्रभु का देखने वाला, अप्रमत्त व धारणात्मक कर्मों में लगा हुआ होता है। काम-क्रोध को वश में करने वाला व औरों को ज्ञान देकर तराने वाला होता है।

159. **स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु।**
चित्रः शिशुः परि तमास्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः।।

ऋ. 10-1-2

उपदेश – 'विकास, शरीर व मस्तिष्क का संगम, जीवन सौन्दर्य, वानस्पतिक भोजन, ज्ञानग्रहण, बुद्धि की सूक्ष्मता, अन्धकार निरसन, ज्ञानवाणियों का जप व स्मरण' इन बातों को अपनाने से हमारा जीवन सफल होता है।

160. **मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने तवमङ्ग वित्से।**
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्।।

ऋ. 10-4-4

उपदेश – प्रभु की महिमा प्रभु ही जानते हैं। अचिन्त्य होते हुए भी वे अपने सुन्दरतम रूप से वे प्रभु हमारे हृदयों में ही है। ज्ञानवाणियों से वे हमारे जीवनों को पवित्र कर देते हैं। अपने सम्पर्क में आने वाले के जीवन को वे मधुर बना देते हैं।

161. **प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।**
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानपामुपस्थे महिषो ववर्धः।।

ऋ. 10-8-1

उपदेश – मनुष्य की उन्नति यही है कि उसका मस्तिष्क ज्ञान से परिपूर्ण हो, 'मन' प्रभु नाम स्मरण में लगा हो, और शरीर 'रेतःकणों' की रक्षा के द्वारा पूर्ण स्वस्थ व नीरोग हो।

162. **यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।**
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे।।

ऋ. 10-16-10

उपदेश – यदि एक घर में मांसाहार को स्थान नहीं मिलता तो वहाँ पितृयज्ञ ठीक से चलता है, ब्रह्मयज्ञ (प्रभु का उपासन)

तथा अग्निहोत्र भी वहाँ निरन्तर होते ही हैं।

163. **प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम्।**
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम्।।

ऋ. 10-46-5

उपदेश - प्रभु की रक्षा के पात्र हम तभी होते हैं जबकि मेधावी-समझदार बनें। उस प्रभु की प्राप्ति के लिए 'वना धी' का धारण आवश्यक है। यह 'वना धी' उपासनायुक्त बुद्धि व कर्म है। हमारे हृदय में उपासना की वृत्ति हो, मस्तिष्क में ज्ञान व हाथों में कर्म। तभी हम प्रभु को प्राप्त करेंगे।

164. **अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम्।**
यर्त्पणयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि।।

ऋ. 10-48-8

उपदेश - हम क्रियाशील पुरुषों को प्रभु के उपासक पुरुषों की प्रेरणा प्राप्त हो। उनसे प्रेरणा को प्राप्त करके हम प्रभु का स्मरण करते हुए 'काम, क्रोध व लोभ' का विनाश करने वाले बनें।

165. **के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्य१मियक्षान्।**
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये।।

ऋ. 10-50-3

उपदेश - आनन्द प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि -

(क) हम प्रभु-प्रेरणा को सुनें।

(ख) प्रभु का स्तवन करते हुए धन सम्पन्न हों।

(ग) आसुर वृत्तियों की नाशक शक्ति से युक्त हों।

(घ) कृषि-प्रधान श्रममय जीवन बितायें।

166. को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत्।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्येग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः।।

ऋ. 10-51-2

उपदेश - आत्मदर्शन से जीवन आनन्दमय बनता है। प्राणापान की साधना मनुष्य को आत्मदर्शन के योग्य बनाती है। प्रभु का प्रकाश मनुष्य को देवयान का पथिक बनाता है।

167. असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक्पश्येम सूर्य मुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति।।

ऋ. 10-59-6

उपदेश - (क) इन्द्रियों को ठीक रखना, (ख) प्राणशक्ति में कमी न आने देना, (ग) निर्धनता का न होना, (घ) सूर्य सम्पर्क, (ङ) अनुकूल मति-ये बातें दीर्घ जीवन का कारण है।

168. इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्।।

ऋ. 10-67-1

उपदेश - हम प्रभु से दी गई वेदवाणी को प्राप्त करें, इसके अनुसार लोकहित में प्रवृत्त हों, अनथक रूप से कार्य करें, प्रभु का स्तवन करें और समाधि की स्थिति तक पहुँचने को अपना लक्ष्य बनायें।

169. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोम सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जी कीये शृणुह्या सुषोमया।।

ऋ. 10-75-5

उपदेश - मैं प्रभु का स्तवन करूँ और निम्न 10 बातों से युक्त जीव वाला बनूँ -

(1) क्रियाशीलता, (2) संयम, (3) ज्ञान, (4) वासना-विद्रावण

(नष्ट करना), (5) शुभ भावनाओं का पूरण, (6) विषयों से अबद्धता, (7) प्राण शक्ति, (8) रोग व राग-द्वेषादि अशुभः क्षय, (9) स्वस्थता व सबलता और (10) विनीतता।

170. संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम्।।

ऋ. 10-8-7

उपदेश - ज्ञान के द्वारा प्रभु-दर्शन पर हमारे जीवनों में ज्ञान व श्रद्धा के धन का वह समन्वय होता है कि सब कामादि शत्रु सुदूर विनष्ट हो जाते हैं।

171. यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः।।

ऋ. 10-88-5

उपदेश - संसार के संचालक प्रभु ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ हैं, उनको प्राप्त करने के लिए मनन, स्वाध्याय व स्तवन आवयक है। वे प्रभु ही पूजा के योग्य हैं, द्यावापृथिवी का पूरण करने वाले हैं। सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं, कण-कण में प्रभु की सत्ता है।

172. दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽ रोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः।।

ऋ. 10-88-7

उपदेश - मानव जीवन का उद्‌देश्य यही है कि प्रभु का दर्शन करके मोक्ष प्राप्त किया जाये। मोक्ष प्राप्ति के लिए साधन ये हैं-(क) शरीर को निरोग रखना, (ख) देवी सम्पत्ति का अर्जन, (ग) मधुर शब्दों का ही उच्चारण और (घ) हवि का स्वीकार= त्यागपूर्वक अदन।

173. न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्त्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय।।

ऋ. 10-102-5

उपदेश - प्रभु के उपासन से शक्ति प्राप्त होती है। इस शक्ति से हम अन्तः शत्रुओं का पराजय करके जितेन्द्रिय बनते हैं। उससे इन्द्रियाँ उत्तम विषयों में विचरती हैं, शतवर्षपर्यन्त शक्तिशाली बनी रहती हैं और हम उत्साह व उल्लास सम्पन्न बने रहते हैं।

174. शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः।
नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त।।

ऋ. 10-102-8

उपदेश - प्रभु-भक्त के लक्षण निम्न हैं -

(1) जितेन्द्रियता (2) औरों को सुखी करने का प्रयत्न (3) शरीर को व्रत बन्धनों में बाँधना, (4) सबके साथ बाँट करके खाना, (5) स्वाध्यायशीलता और (6) शक्ति-सम्पन्न।

175. इमं ते पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्।
येन जिगाय शतवत्सहस्त्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु।।

ऋ. 10-102-9

उपदेश - प्रभु शक्तिशाली को अपने साथ जोड़ते हैं। सर्वत्र व्यापक होकर संसार वृक्ष के छेदन से हमारे मोक्ष का कारण बनते हैं। इस प्रभु के उपासन से हम इन्द्रियों पर विजय कर पाते हैं।

176. परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन्।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम्।।

ऋ. 10-102-11

उपदेश - शुद्ध बुद्धि से आत्मा का दर्शन होता है। इस

स्थिति में रेत:कणों की उर्ध्वगति होती है। बुद्धि परिष्कृत होकर शरीर का उत्तम संचालन होता है। आनन्द का अनुभव होता है। पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

177. **सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन्।**
नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः।। ऋ. 10-105-4

उपदेश - इन्द्र (जितेन्द्रिय पुरुष) वह है-

(क) जो औरों से मिलकर चलता है।

(ख) कर्मों में लगा रहता है।

(ग) शरीर रथ का अधिष्ठाता होता है।

(घ) प्रभु की पूजा करता है।

(ङ) इन्द्रिय दोषों को दूर करता है। इसके इन्द्रियाश्व अपने-अपने कार्यों के द्वारा प्रभु-स्तवन करने वाले होते हैं।

178. **अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै।**
वनौति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान्।। ऋ. 10-105-5

उपदेश - काम-क्रोधादि शत्रुओं का पराजय वह कर पाता है जो (1) इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनता है (2) सात्त्विक अन्नों का मात्रा में सेवन करता है। (3) प्राण साधना में प्रवृत्त होता है।

179. **दैवीं पूर्तिर्दीक्षणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति।**
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति।।
ऋ. 10-107-3

उपदेश - दानवृत्ति हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराती है। अदान वृत्ति प्रभु से दूर ले जाती है। प्रभु की प्रसन्नता इसी में है कि प्रभु से दिये गये धन को हम प्रभु के प्राणियों के हित में प्रयुक्त करें।

180. **इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती।**
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा।।
ऋ. 10-108-5

उपदेश – इन्द्रियों के द्वारा ही मनुष्य अपने ज्ञान को बढ़ाता हुआ एक दिन ज्ञान के शिखर पर जा पहुँचता है। परन्तु यदि ये इन्द्रियाँ सारे समय सांसारिक व्यवहारों में ही पड़ी रहें और सांसारिक सम्पत्ति व भोगों का परिग्रह ही इनका उद्देश्य बन जाये तो फिर ज्ञान समाप्त हो जाता है। अतः यदि ज्ञान प्राप्त करना है तो आवश्यक है कि इन्द्रिय रूप गौवों को अविद्या पर्वत की गुहा से मुक्त करें। इसके लिए विषय वासनाओं से युद्ध करके उन्हें पराजित करना होगा।

181. नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः।।

ऋ. 10-108-10

उपदेश – आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए जितेन्द्रियत्व व शरीर को स्वस्थ रखने की भावना आवश्यक है। केवल बुद्धि हमें आत्मतत्त्व तक नहीं ले जा सकती। आत्म प्राप्ति का मार्ग स्वार्थ से परे व विशाल है। आत्म प्राप्ति के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति 'सर्वभूतहिते रत' बनता है।

182. पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः।।

ऋ. 10-109-6

उपदेश – वानप्रस्थ का मुख्य कार्य वेदज्ञान को औरों के लिए देना है। इस कार्य के लिए इन्हें 'देव, मनुष्य व राजा' बनना है। देववृत्ति का बनकर ये अपने को ज्ञान-ज्योति से दीप्त करते हैं। मनुष्य बनकर विचारपूर्वक कर्म करते हैं और राजा बनकर ये अपने जीवन को बड़ा नियन्त्रित करने वाले होते हैं।

183. वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे।।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम्।।

ऋ. 10-113-3

उपदेश - मनुष्य का कर्त्तव्य है कि (क) कामादि शत्रुओं से युद्ध में प्रवृत्त रहें, (ख) प्रभु के गुणों का शंसन करें, (ग) प्राण साधना को अवश्य करें। ऐसा करने पर उसे महिमा व शक्ति प्राप्त होगी।

184. भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये।।

ऋ. 10-114-4

उपदेश - प्रभु का मित्र (क) सदा उत्साहवर्धक शब्द बोलता है, (ख) निन्दात्मक शब्द नहीं बोलता, (ग) सबके साथ मित्रता से चलता है, (घ) काम-क्रोध को जीतता है, (ङ) श्रद्धायुक्त मन संकल्प से ज्ञान की वाणियों का श्रवण करता है।

185. एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम्।।

ऋ. 10-114-4

उपदेश - प्रभु अद्वितीय पालनकर्ता है। पवित्र हृदयों में प्रभु का वास होता है। उसी हृदय में प्रभु-दर्शन होता है। ज्ञानी प्रभु प्राप्ति का आनन्द लेता है और प्रभु को ज्ञानी प्रिय होता है।

186. कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित्।।

ऋ. 10-114-9

उपदेश - सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा के हृदयों में वेदवाणी का प्रकाश करके प्रभु ही ज्ञान देते हैं। वेदवाणी का उपदेश देते हैं। यज्ञों के पालक भी वे प्रभु हैं, प्रभु ही

हमें इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं।

187. तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम्।
आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः।।

ऋ. 10-115-3

उपदेश - हम उस प्रभु का उपासन करें जो हमारे हृदयों में आसीन हैं, प्रकाशमय हैं, हमारी बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों के बीज को हमारे में बोने वाले हैं और सूर्य के समान मार्गदर्शक हैं।

188. न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते।।

ऋ. 10-117-1

उपदेश - दान देने से -

(क) क्षुधार्त (भूख से व्याकुल, भूखा) का मृत्यु से बचाव होता है और अतियुक्त भी मरने से बच जाता है।

(ख) दान देने से धन बढ़ता ही है।

(ग) धनासक्ति न रहने से प्रभु की प्राप्ति होती है।

(घ) धन का लोभ प्रभु प्राप्ति में बाधक बन जाता है।

189. यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

ऋ. 10-121-4

उपदेश - यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रभु की ही विभूति है, ये सब पर्वत-पृथिवी-समुद्र प्रभु की ही महिमा का गायन करते हैं। इन सब में प्रभु की महिमा को देखते हुए हम प्रभु का ही स्तवन करें।

190. नहि स्थूर्यृतथा यातमस्ति नोत श्रवो विवदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्र सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः।।

ऋ. 10-131-3

उपदेश – प्रभु की मित्रता में ही मनुष्य लक्ष्य की ओर अपने शरीर–रथ को ले चलता है, भटकता नहीं। भोग मार्ग पर न जाने से उसकी शक्ति स्थिर रहती है। उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ क्षीण नहीं होतीं। अतः प्रभु की मित्रता में मनुष्य मार्गभ्रष्ट न होकर अपने ज्ञान व शक्ति का वर्धन करता हुआ लक्ष्य स्थान पर पहुँचता है।

191. यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम्।।

ऋ. 10–135–6

उपदेश – प्रभु ने वेद में जो हमारे मौलिक कर्त्तव्य प्रतिपादित किये हैं, उनका पालन हमारे मोक्ष का कारण होता है। मनुष्य शरीर को स्वस्थ रखे, मन को निर्मल व बुद्धि को दीप्त करे। ये ही उसके मूल कर्त्तव्य हैं। इनका पालन करने पर पुनः शरीर लेने की आवश्यकता नहीं रहती। यही 'निरयण' है।

192. केश्य१ग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते।।

ऋ. 10–136–1

उपदेश – समझदार व्यक्ति जठराग्नि को ठीक रखता है, उत्पन्न हुए–हुए वीर्य का शरीर में ही व्यापन करता है, रेतःरक्षण के द्वारा शरीर को नीरोग व मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल बनाता है। सब विज्ञान को प्राप्त करके वस्तु तत्त्व का दर्शन करता है। उनका ठीक प्रयोग करता हुआ प्रकाशमय जीवन वाला हो जाता है।

193. रायो बुध्नः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्ट शचीभिः।
देवइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम्।।

ऋ. 10–139–3

उपदेश – तत्त्वदर्शन से हम संसार के पदार्थों में फँसने से बचे रहते हैं। देव की तरह निर्माण करने वाले व सत्य का धारण करने वाले होते हैं और इन्द्र की तरह धनों का विजय करते हैं। धन हमारे होते हैं, हम धनों के नहीं हो जाते।

194. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः।।

ऋ. 10-140-3

उपदेश – स्तुति व ध्यान के द्वारा हम प्रभु को देखने का प्रयत्न करें। प्रभु हमें शक्ति देंगे, ज्ञान देंगे। प्रभु स्तवन से हमारी वृत्ति उत्तम बनेगी और हमारे में दिव्य गुणों का विकास होगा।

195. गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षुदिति मन्यते।।

ऋ. 10-146-4

उपदेश – वानप्रस्थ के तीन मुख्य कर्त्तव्य हैं–

(1) ये ज्ञान का वाणियों का स्वाध्याय करें और ज्ञान को समाज में बाँटें।

(2) वासनाओं को विनष्ट करें और

(3) प्रभु का आराधन करें।

196. श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद् वृत्रं नर्यं विवेरपः।
उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः।।

ऋ. 10-146-1

उपदेश – ज्ञान को श्रद्धापूर्वक प्राप्त करने का प्रयत्न करने पर मनुष्य वासना से ऊपर उठता है, लोकहित के कर्मों में प्रवृत्त होता है और मस्तिष्क, शरीर व हृदय को क्रमशः दीप्त दृढ़ तथा दिव्य व दयार्द्र बना पाता है।

197. सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्।।

ऋ. 10-149-1

उपदेश - प्रभु के नियमन साधनों से पृथिवी व द्युलोक अपने-अपने स्थान में थामे गये हैं। प्रभु ही अन्तरिक्ष को वायु आदि से कम्पित करते हैं और मेघरूप जल समुद्र का दोहन करते हैं।

198. सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम्।।

ऋ. 10-161-3

उपदेश - अग्निहोत्र में डाले गये हविद्रव्यों से हजारों पुरुषों का कल्याण होता है, ये उन्हें सौ वर्षों तक जीने वाला बनाते हैं, उनके जीवन को क्रियामय रखते हैं।

199. स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे।।

ऋ. 10-167-2

उपदेश - हम प्रभु से यही याचना करते हैं कि वे हमें प्रकाश प्राप्त करायें। इस प्रकाश से हमारे आसुर भाव विनष्ट हों। आसुर भावों के विनाश से हम सोम का रक्षण करें। सोमरक्षण से हम वास्तविक आनन्द को प्राप्त करें।

200. ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम्।
उस्राः कर्तन भेषजम्।। ऋ. 10-175-2

उपदेश - उपासना के द्वारा हम दुराचरण व दुर्विचार से दूर हों। उषा, प्रकाश व पृथिवी हमारे 'दुच्छुता (दुर्गति) व दुर्मति (दुष्ट बुद्धि) के लिए औषध रूप हों।

वैदिक प्रार्थना

हे सर्वाधार, सर्वान्तर्यामिन् परमेश्वर! आप अनन्तकाल से अपने उपकारो की वर्षा किये जाते हो। प्राणिमात्र की सम्पूर्ण कामनाओं को आप ही प्रतिक्षण पूर्ण करते हो। हमारे लिए जो कुछ शुभ और हितकर है उसे आप बिना माँगे स्वयं हमारी झोली में डालते जाते हो, आपके आँचल में अविचल शान्ति तथा आनन्द का वास है। आपकी चरण-शरण की शीतल छाया में परम तृप्ति है, शाश्वत सुख की उपलब्धि है तथा सब अभिलषित पदार्थों की प्राप्ति है।

हे जगत्पिता परमेश्वर! हममें सच्ची श्रद्धा तथा विश्वास हो। हम आपकी अमृतमयी गोद में बैठने के अधिकारी बनें। अन्त:करण को मलिन बनाने वाली स्वार्थ तथा संकीर्णता की सब क्षुद्र भावनाओं से हम ऊँचे उठें। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि कुटिल भावनाओं तथा सब मलिन वासनाओं को हम दूर करें। अपने हृदय की आसुरीय प्रवृत्तियों के साथ युद्ध में विजय पाने के लिए हे प्रभो! हम आपको ही पुकारते हैं और आपका ही आँचल पकड़ते हैं।

हे परम पावन प्रभो! हममें सात्त्विक प्रवृत्तियाँ जाग्रत हों। क्षमा, सरलता, स्थिरता, निर्भयता, अहंकार-शून्यता इत्यादि शुभ भावनाएँ हमारी सम्पत्ति हों। हमारा शरीर स्वस्थ तथा परिपुष्ट हो, मन सूक्ष्म तथा उन्नत हो, आत्मा पवित्र तथा सुन्दर हो। आपके संस्पर्श से हमारी सारी शक्तियाँ विकसित हों। हृदय दया तथा सहानुभूति से भरा हो। हमारी वाणी में मिठास हो तथा दृष्टि में प्यार हो। विद्या और ज्ञान से हम परिपूर्ण हों। हमारा व्यक्तित्व महान् तथा विशाल हो।

हे प्रभो! अपने आशीर्वादों की वर्षा करो। दीनातिदीनों के मध्य में विचरने वाले आपके चरणारविन्दों में हमारा जीवन अर्पित हो। इसे अपनी सेवा में लेकर हमें कृतार्थ करें।

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः !! शान्तिः !!

राष्ट्रीय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायता-माराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।

यजु. अ. 22 मन्त्र 22

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्मतेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी।।
होवें दुधारु गौएँ, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही।।
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें।।
फल-फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हो योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

भावार्थ :- हे प्रभु! तुम ही माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही बन्धु हो, तुम ही सखा हो, तुम ही गुरु हो, तुम ही आचार्य हो, तुम ही विद्या हो, तुम ही धन हो, हे प्रभु! मेरा यह सम्बन्ध आपके साथ सदा बना रहे।